जीवन रसायन 3
गुरु भक्ति एक अमोघ साधना 36
श्री राम-वशिष्ठ संवाद... 39
आत्मबल का आवाहन 42
आत्मबल कैसे जगायें ? 43

प्रस्तावना

इस पुस्तिका का एक-एक वाक्य ऐसा स्फुलिंग है कि वह हजार वर्षों के घनघोर अंधकार को एक पल में ही घास की तरह जला कर भस्म कर सकता है |इसका हर एक वचन आत्मज्ञानी महापुरुषों के अन्तस्तल से प्रकट हुआ है |

सामान्य मनुष्य को ऊपर उठाकर देवत्व की उच्चतम भूमिका में पहुँचाने का सामर्थ्य इसमें निहित है |प्राचीन भारत की आध्यात्मिक परम्परा में पोषित महापुरुषों ने समाधि द्वारा अपने अस्तित्व की गहराईयों में गोते लगाकर जो अगम्य, अगोचर अमृत का खजाना पाया है, उस अमृत के खजाने को इस छोटी सी पुस्तिका में भरने का प्रयास किया गया है |गागर में सागर भरने का यह एक नम्र प्रयास है |उसके एक-एक वचन को सोपान बनाकर आप अपने लक्ष्य तक पहुँच सकते हैं |

इसके सेवन से मुर्दे के दिल में भी प्राण का संचार हो सकता है |हताश, निराश, दुःखी, चिन्तित होकर बैठे हुए मनुष्य के लिये यह पुस्तिका अमृत-संजीवनी के समान है|

इस पुस्तिका को दैनिक 'टॉनिक' समझकर श्रद्धाभाव से, धैर्य से इसका पठन, चिन्तन एवं मनन करने से तो अवश्य लाभ होगा ही, लेकिन किसी आत्मवेत्ता महापुरुष के श्रीचरणों में रहकर इसका श्रवण-चिन्तन एवं मनन करने का सौभाग्य मिल जाये तब तो पूछना(या कहना) ही क्या ?

दैनिक जीवन-व्यवहार की थकान से विश्रांति पाने के लिये, चालू कार्य से दो मिनट उपराम होकर इस पुस्तिका की दो-चार सुवर्ण-कणिकाएँ पढ़कर आत्मस्वरूप में गोता लगाओ, तन-मन-जीवन को आध्यात्मिक तरंगों से झंकृत होने दो, जीवन-सितार के तार पर परमात्मा को खेलने दो |आपके शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक ताप-संताप शांत होने लगेंगे |जीवन में परम तृप्ति की तरंगें लहरा उठेंगी |

'जीवन रसायन' का यह दिव्य कटोरा आत्मरस के पिपासुओं के हाथ में रखते हुए समिति अत्यन्त आनन्द का अनुभव करती है |विश्वास है की अध्यात्म के जिज्ञासुओं के जीवन को दिव्यामृत से सरोबार करने में यह पुस्तिका उपयोगी सिद्ध होगी |

- श्री योग वेदान्त सेवा समिति

अमदावाद आश्रम

जीवन रसायन

1) जो मनुष्य इसी जन्म में मुक्ति प्राप्त करना चाहता है, उसे एक ही जन्म में हजारों वर्षों का कम कर लेना होगा |उसे इस युग की रफ़्तार से बहुत आगे निकलना होगा |जैसे स्वप्न में मान-अपमान, मेरा-तेरा, अच्छा-बुरा दिखता है और जागने के बाद उसकी सत्यता नहीं रहती वैसे ही इस जाग्रत जगत में भी अनुभव करना होगा |बस...हो गया हजारों वर्षों का काम पूरा |ज्ञान की यह बात हृदय में ठीक से जमा देनेवाले कोई महापुरुष मिल जायें तो हजारों वर्षों के संस्कार, मेरे-तेरे के भ्रम को दो पल में ही निवृत कर दें और कार्य पूरा हो जाये |

2) यदि तू निज स्वरूप का प्रेमी बन जाये तो आजीविका की चिन्ता, रमणियों, श्रवण-मनन और शत्रुओं का दुखद स्मरण यह सब छूट जाये |

उदर-चिन्ता प्रिय चर्चा
विरही को जैसे खले |
निज स्वरूप में निष्ठा हो तो
ये सभी सहज टले ||

3) स्वयं को अन्य लोगों की आँखों से देखना, अपने वास्तविक स्वरूप को न देखकर अपना निरीक्षण अन्य लोगों की दृष्टि से करना, यह जो स्वभाव है वही हमारे सब दुःखों का कारण है |अन्य लोगों की दृष्टि में खूब अच्छा दिखने की इच्छा करना- यही हमारा सामाजिक दोष है |

4) लोग क्यों दुःखी हैं ? क्योंकि अज्ञान के कारण वे अपने सत्यस्वरूप को भूल गये हैं और अन्य लोग जैसा कहते हैं वैसा ही अपने को मान बैठते हैं |यह दुःख तब तक दूर नहीं होगा जब तक मनुष्य आत्म-साक्षात्कार नहीं कर लेगा |

5) शारीरिक, मानसिक, नैतिक व आध्यात्मिक ये सब पीड़ाएँ वेदान्त का अनुभव करने से तुरंत दूर होती हैं और...कोई आत्मनिष्ठ महापुरुष का संग मिल जाये तो वेदान्त का

अनुभव करना कठिन कार्य नहीं है |

6) अपने अन्दर के परमेश्वर को प्रसन्न करने का प्रयास करो |जनता एवं बहुमति को आप किसी प्रकार से संतुष्ट नहीं कर सकते |जब आपके आत्मदेवता प्रसन्न होंगे तो जनता आपसे अवश्य संतुष्ट होगी |

7) सब वस्तुओं में ब्रह्मदर्शन करने में यदि आप सफल न हो सको तो जिनको आप सबसे अधिक प्रेम करते हों ऐसे, कम-से-कम एक व्यक्ति में ब्रह्म परमात्मा का दर्शन करने का प्रयास करो |ऐसे किसी तत्वज्ञानी महापुरुष की शरण पा लो जिनमें ब्रह्मानंद छलकता हो |उनका दृष्टिपात होते ही आपमें भी ब्रह्म का प्रादुर्भाव होने की सम्भावना पनपेगी |जैसे एक्स-रे मशीन की किरण कपड़े, चमड़ी, मांस को चीरकर हड्डियों का फोटो खींच लाती है, वैसे ही ज्ञानी की दृष्टि आपके चित्त में रहने वाली देहाध्यास की परतें चीरकर आपमें ईश्वर को निहारती है |उनकी दृष्टि से चीरी हुई परतों को चीरना अपके लिये भी सरल हो जायेगा |आप भी स्वयं में ईश्वर को देख सकेंगें |अतः अपने चित्त पर ज्ञानी महापुरुष की दृष्टि पड़ने दो |पलकें गिराये बिना, अहोभाव से उनके समक्ष बैठो तो आपके चित्त पर उनकी दृष्टि पड़ेगी |

8) जैसे मछलियाँ जलनिधि में रहती हैं, पक्षी वायुमंडल में ही रहते हैं वैसे आप भी ज्ञानरूप प्रकाशपुंज में ही रहो, प्रकाश में चलो, प्रकाश में विचरो, प्रकाश में ही अपना अस्तित्व रखो |फिर देखो खाने-पीने का मजा, घूमने-फिरने का मजा, जीने-मरने का मजा |

9) ओ तूफान ! उठ ! जोर-शोर से आँधी और पानी की वर्षा कर दे |ओ आनन्द के महासागर ! पृथ्वी और आकाश को तोड़ दे |ओ मानव ! गहरे से गहरा गोता लगा जिससे विचार एवं चिन्ताएँ छिन्न-भिन्न हो जायें |आओ, अपने हृदय से द्वैत की भावना को चुन-चुनकर बाहर निकाल दें, जिससे आनन्द का महासागर प्रत्यक्ष लहराने लगे |

ओ प्रेम की मादकता ! तू जल्दी आ |ओ आत्मध्यान की, आत्मरस की मदिरा ! तू हम पर जल्दी आच्छादित हो जा |हमको तुरन्त डुबो दे |विलम्ब करने का क्या प्रयोजन ? मेरा मन अब एक पल भी दुनियादारी में फँसना नहीं चाहता |अतः इस मन को प्यारे प्रभु में डुबो दे |'मैं और मेरा ...तू और तेरा' के ढेर को आग लगा दे |आशंका और आशाओं के चीथड़ों को उतार फेंक |टुकड़े-टुकड़े करके पिघला दे |द्वैत की भावना को जड़ से उखाड़ दे |रोटी नहीं मिलेगी ? कोई परवाह नहीं |आश्रय और विश्राम नहीं मिलेगा ?

कोई फिकर नहीं |लेकिन मुझे चाहिये प्रेम की, उस दिव्य प्रेम की प्यास और तड़प |

मुझे वेद पुराण कुरान से क्या ?
मुझे सत्य का पाठ पढ़ा दे कोई ||
मुझे मंदिर मस्जिद जाना नहीं |
मुझे प्रेम का रंग चढ़ा दे कोई ||
जहाँ ऊँच या नीच का भेद नहीं |
जहाँ जात या पाँत की बात नहीं ||
न हो मंदिर मस्जिद चर्च जहाँ |
न हो पूजा नमाज़ में फर्क कहीं ||
जहाँ सत्य ही सार हो जीवन का |
रिधवार सिंगार हो त्याग जहाँ ||
जहाँ प्रेम ही प्रेम की सृष्टि मिले |
चलो नाव को ले चलें खे के वहाँ ||

10) स्वप्नावस्था में द्रष्टा स्वयं अकेला ही होता है |अपने भीतर की कल्पना के आधार पर सिंह, सियार, भेड़, बकरी, नदी, नगर, बाग-बगीचे की एक पूरी सृष्टि का सर्जन कर लेता है |उस सृष्टि में स्वयं एक जीव बन जाता है और अपने को सबसे अलग मानकर भयभीत होता है |खुद शेर है और खुद ही बकरी है |खुद ही खुद को डराता है |चालू स्वप्न में सत्य का भान न होने से दुःखी होता है |स्वप्न से जाग जाये तो पता चले कि स्वयं के सिवाय और कोई था ही नहीं |सारा प्रपंच कल्पना से रचा गया था |इसी प्रकार यह जगत जाग्रत के द्वारा कल्पित है, वास्तविक नहीं है |यदि जाग्रत का द्रष्टा अपने आत्मस्वरूप में जाग जाये तो उसके तमाम दुःख-दारिद्रय पल भर में अदृश्य हो जायें |

11) स्वर्ग का साम्राज्य आपके भीतर ही है |पुस्तकों में, मंदिरों में, तीर्थों में, पहाड़ों में, जंगलों में आनंद की खोज करना व्यर्थ है |खोज करना ही हो तो उस अन्तस्थ आत्मानंद का खजाना खोल देनेवाले किसी तत्ववेत्ता महापुरुष की खोज करो |

12) जब तक आप अपने अंतःकरण के अन्धकार को दूर करने के लिए कटिबद्ध नहीं होंगे तब तक तीन सौ तैंतीस करोड़ कृष्ण अवतार ले लें फिर भी आपको परम लाभ नहीं होगा |

13) शरीर अन्दर के आत्मा का वस्त्र है |वस्त्र को उसके पहनने वाले से अधिक प्यार

मत करो |

14) जिस क्षण आप सांसारिक पदार्थों में सुख की खोज करना छोड़ देंगे और स्वाधीन हो जायेंगे, अपने अन्दर की वास्तविकता का अनुभव करेंगे, उसी क्षण आपको ईश्वर के पास जाना नहीं पड़ेगा |ईश्वर स्वयं आपके पास आयेंगे |यही दैवी विधान है |

15) क्रोधी यदि आपको शाप दे और आप समत्व में स्थिर रहो, कुछ न बोलो तो उसका शाप आशीर्वाद में बदल जायेगा |

16) जब हम ईश्वर से विमुख होते हैं तब हमें कोई मार्ग नहीं दिखता और घोर दुःख सहना पड़ता है |जब हम ईश्वर में तन्मय होते हैं तब योग्य उपाय, योग्य प्रवृति, योग्य प्रवाह अपने-आप हमारे हृदय में उठने लगता है |

17) जब तक मनुष्य चिन्ताओं से उद्विग्न रहता है, इच्छा एवं वासना का भूत उसे बैठने नहीं देता तब तक बुद्धि का चमत्कार प्रकट नहीं होता |जंजीरों से जकड़ी हुई बुद्धि हिलडुल नहीं सकती |चिन्ताएँ, इच्छाएँ और वासनाएँ शांत होने से स्वतंत्र वायुमंडल का अविर्भाव होता है |उसमें बुद्धि को विकसित होने का अवकाश मिलता है |पंचभौतिक बन्धन कट जाते हैं और शुद्ध आत्मा अपने पूर्ण प्रकाश में चमकने लगता है |

18) ओ सज़ा के भय से भयभीत होने वाले अपराधी ! न्यायधीश जब तेरी सज़ा का हुक्म लिखने के लिये कलम लेकर तत्पर हो, उस समय यदि एक पल भर भी तू परमानन्द में डूब जाये तो न्यायधीश अपना निर्णय भूले बिना नहीं रह सकता |फ़िर उसकी कलम से वही लिखा जायेगा जो परमात्मा के साथ, तेरी नूतन स्थिति के अनुकूल होगा |

19) पवित्रता और सच्चाई, विश्वास और भलाई से भरा हुआ मनुष्य उन्नति का झण्डा हाथ में लेकर जब आगे बढ़ता है तब किसकी मजाल कि बीच में खड़ा रहे ? यदि आपके दिल में पवित्रता, सच्चाई और विश्वास है तो आपकी दृष्टि लोहे के पर्दे को भी चीर सकेगी |आपके विचारों की ठोकर से पहाड़-के-पहाड़ भी चकनाचूर हो सकेंगे |ओ जगत के बादशाहों ! आगे से हट जाओ |यह दिल का बादशाह पधार रहा है |

20) यदि आप संसार के प्रलोभनों एवं धमकियों से न हिलें तो संसार को अवश्य हिला देंगे |इसमें जो सन्देह करता है वह मंदमति है, मूर्ख है |

21) वेदान्त का यह सिद्धांत है कि हम बद्ध नहीं हैं बल्कि नित्य मुक्त हैं| इतना ही नहीं, 'बद्ध हैं' यह सोचना भी अनिष्टकारी है, भ्रम है |ज्यों ही आपने सोचा कि 'मैं बद्ध हूँ..., दुर्बल हूँ..., असहाय हूँ...' त्यों ही अपना दुर्भाग्य शुरू हुआ समझो |आपने अपने पैरों में एक जंजीर और बाँध दी |अतः सदा मुक्त होने का विचार करो और मुक्ति का अनुभव करो |

22) रास्ते चलते जब किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति को देखो, चाहे वह इंग्लैंड़ का सर्वाधीश हो, चाहे अमेरिका का 'प्रेसिड़ेंट' हो, रूस का सर्वेसर्वा हो, चाहे चीन का 'ड़िक्टेटर' हो- तब अपने मन में किसी प्रकार की ईर्ष्या या भय के विचार मत आने दो |उनकी शाही नज़र को अपनी ही नज़र समझकर मज़ा लूटो कि 'मैं ही वह हूँ |' जब आप ऐसा अनुभव करने की चेष्टा करेंगे तब आपका अनुभव ही सिद्ध कर देगा कि सब एक ही है |

23) यदि हमारा मन ईर्ष्या-द्वेष से रहित बिल्कुल शुद्ध हो तो जगत की कोई वस्तु हमें नुक्सान नहीं पहुँचा सकती |आनंद और शांति से भरपूर ऐसे महात्माओं के पास क्रोध की मूर्ति जैसा मनुष्य भी पानी के समान तरल हो जाता है |ऐसे महात्माओं को देख कर जंगल के सिंह और भेड़ भी प्रेमविह्वल हो जाते हैं |सांप-बिच्छू भी अपना दुष्ट स्वभाव भूल जाते हैं |

24) अविश्वास और धोखे से भरा संसार, वास्तव में सदाचारी और सत्यनिष्ठ साधक का कुछ बिगाड़ नहीं सकता |

25) 'सम्पूर्ण विश्व मेरा शरीर है' ऐसा जो कह सकता है वही आवागमन के चक्कर से मुक्त है| वह तो अनन्त है| फ़िर कहाँ से आयेगा और कहाँ जायेगा? सारा ब्रह्माण्ड़ उसी में है|

26) किसी भी प्रसंग को मन में लाकर हर्ष-शोक के वशीभूत नहीं होना | 'मैं अजर हूँ..., अमर हूँ..., मेरा जन्म नहीं..., मेरी मृत्यु नहीं..., मैं निर्लिप्त आत्मा हूँ...,' यह भाव दृढ़ता से हृदय में धारण करके जीवन जीयो| इसी भाव का निरन्तर सेवन करो |इसीमें सदा तल्लीन रहो|

27) बाह्य संदर्भों के बारे में सोचकर अपनी मानसिक शांति को भंग कभी न होने दो|

28) जब इन्द्रियाँ विषयों की ओर जाने के लिये जबरदस्ती करने लगें तब उन्हें लाल आँख दिखाकर चुप कर दो| जो आत्मानंद के आस्वादन की इच्छा से आत्मचिंतन में लगा रहे, वही सच्चा धीर है|

29) किसी भी चीज़ को ईश्वर से अधिक मूल्यवान मत समझो |

30) यदि हम देहाभिमान को त्यागकर साक्षात ईश्वर को अपने शरीर में कार्य करने दें तो भगवान बुद्ध या जीसस क्राईस्ट हो जाना इतना सरल है जितना निर्धन पाल (Poor Paul) होना |

31) मन को वश करने का उपाय : मन को अपना नौकर समझकर स्वयं को उसका प्रभु मानो | हम अपने नौकर मन की उपेक्षा करेंगे तो कुछ ही दिनों में वह हमारे वश में हो जायेगा | मन के चंचल भावों को ना देखकर अपने शान्त स्वरूप की ओर ध्यान देंगे तो कुछ ही दिनों में मन नष्ट होने लगेगा | इस प्रकार साधक अपने आनंदस्वरूप में मग्न हो सकता है |

32) समग्र संसार के तत्वज्ञान, विज्ञान, गणित, काव्य और कला आपकी आत्मा में से निकलते हैं और निकलते रहेंगे |

33) ओ खुदा को खोजनेवाले ! तुमने अपनी खोजबीन में खुदा को लुप्त कर दिया है | प्रयत्नरूपी तरंगों में अनंत सामर्थ्यरूपी समुद्र को छुपा दिया है |

34) परमात्मा की शान्ति को भंग करने का सामर्थ्य भला किसमें है ? यदि आप सचमुच परमात्म-शान्ति में स्थित हो जाओ तो समग्र संसार उलटा होकर टंग जाये फ़िर भी आपकी शान्ति भंग नहीं हो सकती |

35) महात्मा वही है जो चित्त को ड़ांवांड़ोल करनेवाले प्रसंग आयें फ़िर भी चित्त को वश में रखे, क्रोध और शोक को प्रविष्ट न होने दे |

36) वृति यदि आत्मस्वरूप में लीन होती है तो उसे सत्संग, स्वाध्याय या अन्य किसी भी काम के लिये बाहर नहीं लाना चहिये |

37) सुदृढ़ अचल संकल्प शक्ति के आगे मुसीबतें इस प्रकार भागती हैं जैसे आँधी-तूफ़ान से बादल बिखर जाते हैं |

38) सुषुप्ति (गहरी नींद) आपको बलात अनुभव कराती है कि जाग्रत का जगत चाहे कितना ही प्यारा और सुंदर लगता हो, पर उसे भूले बिना शान्ति नहीं मिलती | सुषुप्ति में बलात विस्मरण हो, उसकी सत्यता भूल जाये तो छः घंटे निद्रा की शान्ति मिले | जाग्रत में उसकी सत्यता का अभाव लगने लगे तो परम शान्ति को प्राप्त प्राज्ञ पुरुष बन जाये | निद्रा रोज़ाना सीख देती है कि यह ठोस जगत जो आपके चित्त को भ्रमित कर रहा है, वह समय की धारा में सरकता जा रहा है | घबराओ

नहीं, चिन्तित मत हो ! तुम बातों में चित्त को भ्रमित मत करो | सब कुछ स्वप्न में सरकता जा रहा है | जगत की सत्यता के भ्रम को भगा दो |

ओ शक्तिमान आत्मा ! अपने अंतरतम को निहार ! ॐ का गुंजन कर ! दुर्बल विचारों एवं चिंताओं को कुचल ड़ाल ! दुर्बल एवं तुच्छ विचारों तथा जगत को सत्य मानने के कारण तूने बहुत-बहुत सहन किया है | अब उसका अंत कर दे |

39) ज्ञान के कठिनमार्ग पर चलते वक्त आपके सामने जब भारी कष्ट एवं दुख आयें तब आप उसे सुख समझो क्योंकि इस मार्ग में कष्ट एवं दुख ही नित्यानंद प्राप्त करने में निमित्त बनते है | अतः उन कष्टों, दुखों और आघातों से किसी भी प्रकार साहसहीन मत बनो, निराश मत बनो | सदैव आगे बढ़ते रहो | जब तक अपने सत्यस्वरूप को यथार्थ रूप से न जान लो, तब तक रुको नहीं |

40) स्वपनावस्था में आप शेर को देखते हैं और ड़रते हैं कि वह आपको खा जायेगा | परंतु आप जिसको देखते हैं वह शेर नहीं, आप स्वयं हैं | शेर आपकी कल्पना के अतिरिक्त और कुछ नहीं | इस प्रकार जाग्रतावस्था में भी आपका घोर-से-घोर शत्रु भी स्वयं आप ही हैं, दूसरा कोई नहीं | प्रथकत्व, अलगाव के विचार को अपने हृदय से दूर हटा दो | आपसे भिन्न कोई मित्र या शत्रु होना केवल स्वप्न-भ्रम है |

41) अशुभ का विरोध मत करो | सदा शांत रहो | जो कुछ सामने आये उसका स्वागत करो, चाहे आपकी इच्छा की धारा से विपरीत भी हो | तब आप देखेंगे कि प्रत्यक्ष बुराई, भलाई में बदल जायेगी |

42) रात्रि में निद्राधीन होने से पहले बिस्तर पर सीधे, सुखपूर्वक बैठ जाओ | आँखें बंद करो | नाक से श्वास लेकर फ़ेफ़ड़ों को भरपूर भर दो | फ़िर उच्च स्वर से ‘ॐ…’ का लंबा उच्चारण करो | फ़िर से गहरा स्वास लेकर ‘ॐ…’ का लंबा उच्चारण करो | इस प्रकार दस मिनट तक करो | कुछ ही दिनों के नियमित प्रयोग के बाद इसके चमत्कार का अनुभव होगा | रात्रि की नींद साधना में परिणत हो जायेगी | दिल-दिमाग में शांति एवं आनंद की वर्षा होगी | आपकी लौकिक निद्रा योगनिद्रा में बदल जयेगी |

43) हट जाओ, ओ संकल्प और इच्छाओं ! हट जाओ ! तुम संसार की क्षणभंगुर प्रशंसा एवं धन-सम्पत्ति के साथ सम्बंध रखती हो | शरीर चाहे कैसी भी दशा में रहे, उसके साथ मेरा कोई सरोकार नहीं | सब शरीर मेरे ही हैं |

44) किसी भी तरह समय बिताने के लिये मज़दूर की भांति काम मत करो | आनंद के लिये,

उपयोगी कसरत समझकर, सुख, क्रीड़ा या मनोरंजक खेल समझकर एक कुलीन राजकुमार की भांति काम करो | दबे हुए, कुचले हुए दिल से कभी कोई काम हाथ में मत लो |

45) समग्र संसार को जो अपना शरीर समझते हैं, प्रत्येक व्यक्ति को जो अपना आत्मस्वरूप समझते हैं, ऐसे ज्ञानी किससे अप्रसन्न होंगे ? उनके लिये विक्षेप कहाँ रहा ?

46) संसार की तमाम वस्तुऐं सुखद हों या भयानक, वास्तव में तो तुम्हारी प्रफुलता और आनंद के लिये ही प्रकृति ने बनाई हैं | उनसे ड़रने से क्या लाभ ? तुम्हारी नादानी ही तुम्हें चक्कर में ड़ालती है | अन्यथा, तुम्हें नीचा दिखाने वाला कोई नहीं | पक्का निश्चय रखो कि यह जगत तुम्हारे किसी शत्रु ने नहीं बनाया | तुम्हारे ही आत्मदेव का यह सब विलास है |

47) महात्मा वे हैं जिनकी विशाल सहानुभूति एवं जिनका मातृवत हृदय सब पापियों को, दीन-दुखियों को प्रेम से अपनी गोद में स्थान देता है |

48) यह नियम है कि भयभीत प्राणी ही दूसरों को भयभीत करता है | भयरहित हुए बिना अभिन्नता आ नहीं सकती, अभिन्नता के बिना वासनाओं का अंत सम्भव नहीं है और निर्वासनिकता के बिना निर्वैरता, समता, मुदिता आदि दिव्य गुण प्रकट नहीं होते | जो बल दूसरों की दुर्बलता को दूर ना कर सके, वह वास्तव में बल नहीं |

49) ध्यान में बैठने से पहले अपना समग्र मानसिक चिंतन तथा बाहर की तमाम सम्पत्ति ईश्वर के या सदगुरु के चरणों में अर्पण करके शांत हो जाओ | इससे आपको कोई हानि नहीं होगी | ईश्वर आपकी सम्पत्ति, देह, प्राण और मन की रक्षा करेंगे | ईश्वर अर्पण बुद्धि से कभी हानि नहीं होती | इतना ही नहीं, देह, प्राण में नवजीवन का सिंचन होता है | इससे आप शांति व आनंद का स्त्रोत बनकर जीवन को सार्थक कर सकेंगे | आपकी और पूरे विश्व की वास्तविक उन्नति होगी |

50) प्रकृति प्रसन्नचित्त एवं उद्योगी कार्यकर्ता को हर प्रकार से सहायता करती है |

51) प्रसन्नमुख रहना यह मोतियों का खज़ाना देने से भी उत्तम है |

52) चाहे करोड़ों सूर्य का प्रलय हो जाये, चाहे असंख्य चन्द्रमा पिघलकर नष्ट हो जायें परंतु ज्ञानी महापुरुष अटल एवं अचल रहते हैं |

53) भौतिक पदार्थों को सत्य समझना, उनमें आसक्ति रखना, दुख-दर्द व चिंताओं को आमंत्रण देने के समान है | अतः बाह्य नाम-रूप पर अपनी शक्ति व समय को नष्ट करना यह बड़ी गलती है |

54) जब आपने व्यक्तित्व विषयक विचारों का सर्वथा त्याग कर दिया जाता है तब उसके समान अन्य कोई सुख नहीं, उसके समान श्रेष्ठ अन्य कोई अवस्था नहीं |

55) जो लोग आपको सबसे अधिक हानि पहुँचाने का प्रयास करते हैं, उन पर कृपापूर्ण होकर प्रेममय चिंतन करें |वे आपके ही आत्मस्वरूप हैं |

56) संसार में केवल एक ही रोग है |**ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या** - इस वेदांतिक नियम का भंग ही सर्व व्याधियों का मूल है |वह कभी एक दुख का रूप लेता है तो कभी दूसरे दुख का |इन सर्व व्याधियों की एक ही दवा है : अपने वास्तविक स्वरूप ब्रह्मत्व में जाग जाना |

57) बुद्ध ध्यानस्थ बैठे थे |पहाड़ पर से एक शिलाखंड लुढकता हुआ आ रहा था |बुद्ध पर गिरे इससे पहले ही वह एक दूसरे शिलाखंड के साथ टकराया |भयंकर आवाज़ के साथ उसके दो भाग हो गये |उसने अपना मार्ग बदल लिया |ध्यानस्थ बुद्ध की दोनों तरफ़ से दोनों भाग गुज़र गये | बुद्ध बच गये | केवल एक छोटा सा कंकड़ उनके पैर में लगा |पैर से थोड़ा खून बहा |बुद्ध स्वस्थता से उठ खड़े हुए और शिष्यों से कहा:

"भीक्षुओं ! सम्यक समाधि का यह ज्वलंत प्रमाण है |मैं यदि ध्यान-समाधि में ना होता तो शिलाखंड ने मुझे कुचल दिया होता |लेकिन ऐसा ना होकर उसके दो भाग हो गये |उसमें से सिर्फ़ एक छोटा-सा कंकड़ ऊछलकर मेरे पैर में लगा |यह जो छोटा-सा ज़ख्म हुआ है वह ध्यान की पूर्णता में रही हुई कुछ न्यूनता का परिणाम है |यदि ध्यान पूर्ण होता तो इतना भी ना लगता|"

58) कहाँ है वह तलवार जो मुझे मार सके ? कहाँ है वह शस्त्र जो मुझे घायल कर सके ? कहाँ है वह विपत्ति जो मेरी प्रसन्नता को बिगाड़ सके ? कहाँ है वह दुख जो मेरे सुख में विघ्न ड़ाल सके ? मेरे सब भय भाग गये |सब संशय कट गये |मेरा विजय-प्राप्ति का दिन आ पहुँचा है |कोई संसारिक तरंग मेरे निश्छल चित्त को आंदोलित नहीं कर सकती |इन तरंगों से मुझे ना कोई लाभ है ना हानि है |मुझे शत्रु से द्वेष नहीं, मित्र से राग नहीं |मुझे मौत का भय नहीं, नाश का ड़र नहीं, जीने की वासना नहीं, सुख की इच्छा नहीं और दुख से द्वेष नहीं क्योंकि यह सब मन में रहता है और मन मिथ्या कल्पना है |

59) सम्पूर्ण स्वास्थय की अजीब युक्ति: रोज सुबह तुलसी के पाँच पत्ते चबाकर एक ग्लास बासी पानी पी लो |फ़िर जरा घूम लो, दौड़ लो या कमरे में ही पंजों के बल थोड़ा कूद लो |नहा-धोकर स्वस्थ, शान्त होकर एकांत में बैठ जाओ |दस बारह गहरे-गहरे श्वास लो |आगे-पीछे के कर्तव्यों से निश्चिंत हो जाओ |आरोग्यता, आनंद, सुख, शान्ति प्रदान करनेवाली विचारधारा को चित्त में बहने दो |बिमारी के विचार को हटाकर इस प्रकार की भावना पर मन को दृढ़ता से एकाग्र करो कि:

मेरे अंदर आरोग्यता व आनंद का अनंत स्त्रोत प्रवाहित हो रहा है… मेरे अंतराल में दिव्यामृत का महासागर लहरा रहा है |मैं अनुभव कर रहा हूँ कि समग्र सुख, आरोग्यता, शक्ति मेरे भीतर है |मेरे मन में अनन्त शक्ति और सामर्थ्य है|मैं स्वस्थ हूँ |पूर्ण प्रसन्न हूँ |मेरे अंदर-बाहर सर्वत्र परमात्मा का प्रकाश फ़ैला हुआ है |मैं विक्षेप रहित हूँ |सब द्वन्दों से मुक्त हूँ |स्वर्गीय सुख मेरे अंदर है |मेरा हृदय परमात्मा का गुप्त प्रदेश है |फ़िर रोग-शोक वहाँ कैसे रहे सकते हैं ? मैं दैवी ओज के मंड़ल में प्रविष्ट हो चुका हूँ |वह मेरे स्वास्थ्य का प्रदेश है |मैं तेज का पुँज हूँ |आरोग्यता का अवतार हूँ |

याद रखो : आपके अंतःकरण में स्वास्थय, सुख, आनंद और शान्ति ईश्वरीय वरदान के रूप में विद्यमान है |अपने अंतःकरण की आवाज़ सुनकर निशंक जीवन व्यतीत करो |मन में से कल्पित रोग के विचारों को निकाल दो |प्रत्येक विचार, भाव, शब्द और कार्य को ईश्वरीय शक्ति से परिपूर्ण रखो |ॐकार का सतत गुंजन करो |

सुबह-शाम उपरोक्त विचारों का चिंतन-मनन करने से विशेष लाभ होगा |ॐ आनंद… ॐ शांति… पूर्ण स्वस्थ… पूर्ण प्रसन्न…

60) भय केवल अज्ञान की छाया है, दोषों की काया है, मनुष्य को धर्ममार्ग से गिराने वाली आसुरी माया है |

61) याद रखो: चाहे समग्र संसार के तमाम पत्रकार, निन्दक एकत्रित होकर आपके विरुध आलोचन करें फ़िर भी आपका कुछ बिगाड़ नहीं सकते|हे अमर आत्मा ! स्वस्थ रहो |

62) लोग प्रायः जिनसे घृणा करते हैं ऐसे निर्धन, रोगी इत्यादि को साक्षात् ईश्वर समझकर उनकी सेवा करना यह अनन्य भक्ति एवं आत्मज्ञान का वास्तविक स्वरूप है|

63) रोज प्रातः काल उठते ही ॐकार का गान करो|ऐसी भावना से चित्त को सराबोर कर दो कि : ‘मैं शरीर नहीं हूँ|सब प्राणी, कीट, पतंग, गन्धर्व में मेरा ही आत्मा विलास कर रहा है|अरे, उनके रूप में मैं ही विलास कर रहा हूँ|’ भैया ! हर रोज ऐसा अभ्यास करने से यह सिद्धांत हृदय में स्थिर हो जायेगा|

64) प्रेमी आगे-पीछे का चिन्तन नहीं करता|वह न तो किसी आशंका से भयभीत होता है और न वर्त्तमान परिस्थिति में प्रेमास्पद में प्रीति के सिवाय अन्य कहीं आराम पाता है|

65) जैसे बालक प्रतिबिम्ब के आश्रयभूत दर्पण की ओर ध्यान न देकर प्रतिबिम्ब के साथ खेलता है, जैसे पामर लोग यह समग्र स्थूल प्रपंच के आश्रयभूत आकाश की ओर ध्यान न देकर केवल स्थूल प्रपंच की ओर ध्यान देते हैं, वैसे ही नाम-रूप के भक्त, स्थूल दृष्टि के लोग अपने दुर्भाग्य के कारण समग्र संसार के आश्रय सच्चिदानन्द परमात्मा का ध्यान न करके संसार के पीछे पागल होकर भटकते रहते हैं |

66) इस सम्पूर्ण जगत को पानी के बुलबुले की तरह क्षणभंगुर जानकर तुम आत्मा में स्थिर हो जाओ | तुम अद्वैत दृष्टिवाले को शोक और मोह कैसे ?

67) एक आदमी आपको दुर्जन कहकर परिच्छिन्न करता है तो दूसरा आपको सज्जन कहकर भी परिच्छिन्न ही करता है | कोई आपकी स्तुति करके फुला देता है तो कोई निन्दा करके सिकुड़ा देता है | ये दोनों आपको परिच्छिन्न बनाते हैं | भाग्यवान् तो वह पुरूष है जो तमाम बन्धनों के विरूद्ध खड़ा होकर अपने देवत्व की, अपने ईश्वरत्व की घोषणा करता है, अपने आत्मस्वरूप का अनुभव करता है | जो पुरुष ईश्वर के साथ अपनी अभेदता पहचान सकता है और अपने इर्दगिर्द के लोगों के समक्ष, समग्र संसार के समक्ष निडर होकर ईश्वरत्व का निरूपण कर सकता है, उस पुरूष को ईश्वर मानने के लिये सारा संसार बाध्य हो जाता है | पूरी सृष्टि उसे अवश्य परमात्मा मानती है |

68) यह स्थूल भौतिक पदार्थ इन्द्रियों की भ्रांति के सिवाय और कुछ नहीं हैं | जो नाम व रूप पर भरोसा रखता है, उसे सफलता नहीं मिलती | सूक्ष्म सिद्धांत अर्थात् सत्य आत्म-तत्व पर निर्भर रहना ही सफलता की कुंजी है | उसे ग्रहण करो, उसका मनन करो और व्यवहार करो | फिर नाम-रूप आपको खोजते फिरेंगे |

69) सुख का रहस्य यह है : आप ज्यों-ज्यों पदार्थों को खोजते-फिरते हो, त्यों-त्यों उनको खोते जाते हो | आप जितने कामना से परे होते हो, उतने आवश्यकताओं से भी परे हो जाते हो और पदार्थ भी आपका पीछा करते हुए आते हैं |

70) आनन्द से ही सबकी उत्पत्ति, आनन्द में ही सबकी स्थिति एवं आनन्द में ही सबकी लीनता देखने से आनन्द की पूर्णता का अनुभव होता है |

71) हम बोलना चहते हैं तभी शब्दोच्चारण होता है, बोलना न चाहें तो नहीं होता | हम देखना चाहें तभी बाहर का दृश्य दिखता है, नेत्र बंद कर लें तो नहीं दिखता | हम जानना चाहें तभी पदार्थ का ज्ञान होता है, जानना नहीं चाहें तो ज्ञान नहीं होता | अतः जो कोई पदार्थ देखने, सुनने या जानने में आता है उसको बाधित करके बाधित करनेवाली ज्ञानरूपी बुद्धि की वृत्ति को भी बाधित कर दो | उसके बाद जो शेष रहे वह ज्ञाता है | ज्ञातृत्व धर्मरहित शुद्धस्वरूप ज्ञाता ही नित्य सच्चिदानन्द

ब्रह्म है | निरंतर ऐसा विवेक करते हुए ज्ञान व ज्ञेयरहित केवल चिन्मय, नित्य, विज्ञानानन्दघनरूप में स्थिर रहो |

72) यदि आप सर्वांगपूर्ण जीवन का आनन्द लेना चाहते हो तो कल की चिन्ता छोड़ो | अपने चारों ओर जीवन के बीज बोओ | भविष्य में सुनहरे स्वपन साकार होते देखने की आदत बनाओ | सदा के लिये मन में यह बात पक्की बैठा दो कि आपका आनेवाला कल अत्यन्त प्रकाशमय, आनन्दमय एवं मधुर होगा | कल आप अपने को आज से भी अधिक भाग्यवान् पायेंगे | आपका मन सर्जनात्मक शक्ति से भर जायेगा | जीवन ऐश्वर्यपूर्ण हो जायेगा | आपमें इतनी शक्ति है कि विघ्न आपसे भयभीत होकर भाग खड़े होंगे | ऐसी विचारधारा से निश्चित रूप से कल्याण होगा | आपके संशय मिट जायेंगे |

73) ओ मानव ! तू ही अपनी चेतना से सब वस्तुओं को आकर्षक बना देता है | अपनी प्यार भरी दृष्टि उन पर डालता है, तब तेरी ही चमक उन पर चढ़ जाती है और…फिर तू ही उनके प्यार में फ़ँस जाता है |

74) मैंने विचित्र एवं अटपटे मार्गों द्वारा ऐसे तत्वों की खोज की जो मुझे परमात्मा तक पहुँचा सके | लेकिन मैं जिस-जिस नये मार्ग पर चला उन सब मार्गों से पता चला कि मैं परमात्मा से दूर चला गया | फिर मैंने बुद्धिमत्ता एवं विद्या से परमात्मा की खोज की फिर भी परमात्मा से अलग रहा | ग्रन्थालयों एवं विद्यालयों ने मेरे विचारों में उल्टी गड़बड़ कर दी | मैं थककर बैठ गया | निस्तब्ध हो गया | संयोगवश अपने भीतर ही झांका, ध्यान किया तो उस अन्तर्दृष्टि से मुझे सर्वस्व मिला जिसकी खोज मैं बाहर कर रहा था | मेरा आत्मस्वरूप सर्वत्र व्याप्त हो रहा है |

75) जैसे सामान्य मनुष्य को पत्थर, गाय, भैंस स्वाभाविक रीति से दृष्टिगोचर होते हैं, वैसे ही ज्ञानी को निजानन्द का स्वाभाविक अनुभव होता है |

76) वेदान्त का यह अनुभव है कि नीच, नराधम, पिशाच, शत्रु कोई है ही नहीं | पवित्र स्वरूप ही सर्व रूपों में हर समय शोभायमान है | अपने-आपका कोई अनिष्ट नहीं करता | मेरे सिवा और कुछ है ही नहीं तो मेरा अनिष्ट करने वाला कौन है ? मुझे अपने-आपसे भय कैसा ?

77) यह चराचर सृष्टिरूपी द्वैत तब तक भासता है जब तक उसे देखनेवाला मन बैठा है | मन शांत होते ही द्वैत की गंध तक नहीं रहती |

78) जिस प्रकार एक धागे में उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ फूल पिरोये हुए हैं, उसी प्रकार मेरे आत्मस्वरूप में उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ शरीर पिरोये हुए हैं | जैसे फूलों की गुणवत्ता का प्रभाव धागे पर नहीं पड़ता, वैसे ही शरीरों की गुणवत्ता का प्रभाव मेरी सर्वव्यापकता नहीं पड़ता | जैसे सब फूलों के विनाश से धागे को कोई हानि नहीं, वैसे शरीरों के विनाश से मुझ सर्वगत आत्मा को कोई हानि नहीं होती |

79) मैं निर्मल, निश्चल, अनन्त, शुद्ध, अजर, अमर हूँ | मैं असत्यस्वरूप देह नहीं | सिद्ध पुरुष इसीको 'ज्ञान' कहते हैं |

80) मैं भी नहीं और मुझसे अलग अन्य भी कुछ नहीं | साक्षात् आनन्द से परिपूर्ण, केवल, निरन्तर और सर्वत्र एक ब्रह्म ही है | उद्वेग छोड़कर केवल यही उपासना सतत करते रहो |

81) जब आप जान लेंगे कि दूसरों का हित अपना ही हित करने के बराबर है और दूसरों का अहित करना अपना ही अहित करने के बराबर है, तब आपको धर्म के स्वरूप का साक्षत्कार हो जायेगा |

82) आप आत्म-प्रतिष्ठा, दलबन्दी और ईर्ष्या को सदा के लिए छोड़ दो | पृथ्वी माता की तरह सहनशील हो जाओ | संसार आपके कदमों में न्योछावर होने का इंतज़ार कर रहा है |

83) मैं निर्गुण, निष्क्रिय, नित्य मुक्त और अच्युत हूँ | मैं असत्यस्वरूप देह नहीं हूँ | सिद्ध पुरुष इसीको 'ज्ञान' कहते हैं |

84) जो दूसरों का सहारा खोजता है, वह सत्यस्वरूप ईश्वर की सेवा नहीं कर सकता |

85) सत्यस्वरूप महापुरुष का प्रेम सुख-दुःख में समान रहता है, सब अवस्थाओं में हमारे अनुकूल रहता है | हृदय का एकमात्र विश्रामस्थल वह प्रेम है | वृद्धावस्था उस आत्मरस को सुखा नहीं सकती | समय बदल जाने से वह बदलता नहीं | कोई विरला भाग्यवान ही ऐसे दिव्य प्रेम का भाजन बन सकता है |

86) शोक और मोह का कारण है प्राणियों में विभिन्न भावों का अध्यारोप करना | मनुष्य जब एक को सुख देनेवाला, प्यारा, सुहृद समझता है और दूसरे को दुःख देनेवाला शत्रु समझकर उससे द्वेष करता है तब उसके हृदय में शोक और मोह का उदय होना अनिवार्य

है।वह जब सर्व प्राणियों में एक अखण्ड सत्ता का अनुभव करने लगेगा, प्राणिमात्र को प्रभु का पुत्र समझकर उसे आत्मभाव से प्यार करेगा तब उस साधक के हृदय में शोक और मोह का नामोनिशान नहीं रह जायेगा।वह सदा प्रसन्न रहेगा।संसार में उसके लिये न ही कोई शत्रु रहेगा और न ही कोई मित्र।उसको कोई क्लेश नहीं पहुँचायेगा।उसके सामने विषधर नाग भी अपना स्वभाव भूल जायेगा।

87) जिसको अपने प्राणों की परवाह नहीं, मृत्यु का नाम सुनकर विचलित न होकर उसका स्वागत करने के लिए जो सदा तत्पर है, उसके लिए संसार में कोई कार्य असाध्य नहीं।उसे किसी बाह्य शस्त्रों की जरूरत नहीं, साहस ही उसका शस्त्र है।उस शस्त्र से वह अन्याय का पक्ष लेनेवालों को पराजित कर देता है फिर भी उनके लिए बुरे विचारों का सेवन नहीं करता।

88) चिन्ता ही आनन्द व उल्लास का विध्वंस करनेवाली राक्षसी है।

89) कभी-कभी मध्यरात्रि को जाग जाओ।उस समय इन्द्रियाँ अपने विषयों के प्रति चंचल नहीं रहतीं।बहिर्मुख स्फुरण की गति मन्द होती है।इस अवस्था का लाभ लेकर इन्द्रियातीत अपने चिदाकाश स्वरूप का अनुभव करो।जगत, शरीर व इन्द्रियों के अभाव में भी अपने अखण्ड अस्तित्व को जानो।

90) दृश्य में प्रीति नहीं रहना ही असली वैराग्य है।

91) रोग हमें दबाना चाहता है।उससे हमारे विचार भी मन्द हो जाते हैं।अतः रोग की निवृति करनी चहिए।लेकिन जो विचारवान् पुरुष है, वह केवल रोगनिवृति के पीछे ही नहीं लग जाता।वह तो यह निगरानी रखता है कि भयंकर दुःख के समय भी अपना विचार छूट तो नहीं गया ! ऐसा पुरुष 'हाय-हाय' करके प्राण नहीं त्यागता क्योंकि वह जानता है कि रोग उसका दास है।रोग कैसा भी भय दिखाये लेकिन विचारवान् पुरुष इससे प्रभावित नहीं होता।

92) जिस साधक के पास धारणा की दृढ़ता एवं उद्येश्य की पवित्रता, ये दो गुण होंगे वह अवश्य विजेता होगा।इन दो शास्त्रों से सुसज्जित साधक समस्त विघ्न-बाधाओं का सामना करके आखिर में विजयपताका फहरायेगा।

93) जब तक हमारे मन में इस बात का पक्का निश्चय नहीं होगा कि सृष्टि शुभ है तब तक मन एकाग्र नहीं होगा।जब तक हम समझते रहेंगे कि सृष्टि बिगड़ी हुई है तब तक

मन सशंक दृष्टि से चारों ओर दौड़ता रहेगा |सर्वत्र मंगलमय दृष्टि रखने से मन अपने-आप शांत होने लगेगा |

94) आसन स्थिर करने के लिए संकल्प करें कि जैसे पृथ्वी को धारण करते हुए भी शेषजी बिल्कुल अचल रहते हैं वैसे मैं भी अचल रहूँगा |मैं शरीर और प्राण का दृष्टा हूँ |

95) 'संसार मिथ्या है' - यह मंद ज्ञानी की धारणा है |'संसार स्वप्नवत् है' - यह मध्यम ज्ञानी की धारणा है |'संसार का अत्यन्त अभाव है, संसार की उत्पत्ति कभी हुई ही नहीं' - यह उत्तम ज्ञानी की धारणा है |

96) आप यदि भक्तिमार्ग में हों तो सारी सृष्टि भगवान की है इसलिए किसीकी भी निन्दा करना ठीक नहीं |आप यदि ज्ञानमार्ग में हों तो यह सृष्टि अपना ही स्वरूप है |आप अपनी ही निन्दा कैसे कर सकते हैं ? इस प्रकार दोंनो मार्गों में परनिन्दा का अवकाश ही नहीं है |

97) दृश्य में दृष्टा का भान एवं दृष्टा में दृश्य का भान हो रहा है |इस गड़बड़ का नाम ही अविवेक या अज्ञान है |दृष्टा को दृष्टा तथा दृश्य को दृश्य समझना ही विवेक या ज्ञान है |

98) आसन व प्राण स्थिर होने से शरीर में विद्युत पैदा होती है |शरीर के द्वारा जब भी क्रिया की जाती है तब वह विद्युत बाहर निकल जाती है |इस विद्युत को शरीर में रोक लेने से शरीर निरोगी बन जाता है |

99) स्वप्न की सृष्टि अल्पकालीन और विचित्र होती है |मनुष्य जब जागता है तब जानता है कि मैं पलंग पर सोया हूँ |मुझे स्वप्न आया |स्वप्न में पदार्थ, देश काल, क्रिया इत्यादि पूरी सृष्टि का सर्जन हुआ |लेकिन मेरे सिवाय और कुछ भी न था |स्वप्न की सृष्टि झूठी थी |इसी प्रकार तत्वज्ञानी पुरूष अज्ञानरूपी निद्रा से ज्ञानरूपी जाग्रत अवस्था को प्राप्त हुए हैं |वे कहते हैं कि एक ब्रह्म के सिवा अन्य कुछ है ही नहीं |जैसे स्वप्न से जागने के बाद हमें स्वप्न की सृष्टि मिथ्या लगती है, वैसे ही ज्ञानवान को यह जगत मिथ्या लगता है |

100) शारीरिक कष्ट पड़े तब ऐसी भावना हो जाये कि : 'यह कष्ट मेरे प्यारे प्रभु की ओर से है…' तो वह कष्ट तप का फल देता है |

101) चलते-चलते पैर में छाले पड़ गये हों, भूख व्याकुल कर रही हो, बुद्धि विचार

करने में शिथिल हो गई हो, किसी पेड़ के नीचे पड़े हों, जीवन असम्भव हो रहा हो, मृत्यु का आगमन हो रहा हो तब भी अन्दर से वही निर्भय ध्वनि उठे :
'सोऽहम्...सोऽहम्...मुझे भय नहीं...मेरी मृत्यु नहीं...मुझे भूख नहीं...प्यास नहीं... प्रकृति की कोई भी व्यथा मुझे नष्ट नहीं कर सकती...मैं वही हूँ...वही हूँ...'

102) जिनके आगे प्रिय-अप्रिय, अनुकूल-प्रतिकूल, सुख-दुःख और भूत-भविष्य एक समान हैं ऐसे ज्ञानी, आत्मवेत्ता महापुरूष ही सच्चे धनवान हैं |

103) दुःख में दुःखी और सुख में सुखी होने वाले लोहे जैसे होते हैं |दुःख में सुखी रहने वाले सोने जैसे होते हैं |सुख-दुःख में समान रहने वाले रत्न जैसे होते हैं, परन्तु जो सुख-दुःख की भावना से परे रहते हैं वे ही सच्चे सम्राट हैं |

104) स्वप्न से जाग कर जैसे स्वप्न को भूल जाते हैं वैसे जाग्रत से जागकर थोड़ी देर के लिए जाग्रत को भूल जाओ | रोज प्रातः काल में पन्द्रह मिनट इस प्रकार संसार को भूल जाने की आदत डालने से आत्मा का अनुसंधान हो सकेगा | इस प्रयोग से सहजावस्था प्राप्त होगी |

105) त्याग और प्रेम से यथार्थ ज्ञान होता है | दुःखी प्राणी में त्याग व प्रेम विचार से आते हैं | सुखी प्राणी में त्याग व प्रेम सेवा से आते हैं क्योंकि जो स्वयं दुःखी है वह सेवा नहीं कर सकता पर विचार कर सकता है | जो सुखी है वह सुख में आसक्त होने के कारण उसमें विचार का उदय नहीं हो सकता लेकिन वह सेवा कर सकता है |

106) लोगों की पूजा व प्रणाम से जैसी प्रसन्नता होती है वैसी ही प्रसन्नता जब मार पड़े तब भी होती हो तो ही मनुष्य भिक्षान्न ग्रहण करने का सच्चा अधिकारी माना जाता है |

107) हरेक साधक को बिल्कुल नये अनुभव की दिशा में आगे बढ़ना है | इसके लिये ब्रह्मज्ञानी महात्मा की अत्यन्त आवश्यकता होती है | जिसको सच्ची जिज्ञासा हो, उसे ऐसे महात्मा मिल ही जाते हैं | दृढ जिज्ञासा से शिष्य को गुरु के पास जाने की इच्छा होती है | योग्य जिज्ञासु को समर्थ गुरु स्वयं दर्शन देते हैं |

108) बीते हुए समय को याद न करना, भविष्य की चिन्ता न करना और वर्त्तमान में प्राप्त सुख-दुःखादि में सम रहना ये जीवनमुक्त पुरुष के लक्षण हैं |

109) जब बुद्धि एवं हृदय एक हो जाते हैं तब सारा जीवन साधना बन जाता है |

110) बुद्धिमान पुरुष संसार की चिन्ता नहीं करते लेकिन अपनी मुक्ति के बारे में सोचते हैं | मुक्ति का विचार ही त्यागी, दानी, सेवापरायण बनाता है | मोक्ष की इच्छा से सब सदगुण आ जाते हैं | संसार की इच्छा से सब दुर्गुण आ जाते हैं |

111) परिस्थिति जितनी कठिन होती है, वातावरण जितना पीड़ाकारक होता है, उससे गुजरने वाला उतना ही बलवान बन जाता है | अतः बाह्य कष्टों और चिन्ताओं का स्वागत करो | ऐसी परिस्थिति में भी वेदान्त को आचरण में लाओ | जब आप वेदान्ती जीवन व्यतीत करेंगे तब देखेंगे कि समस्त वातावरण और परिस्थितियाँ आपके वश में हो रही हैं, आपके लिये उपयोगी सिद्ध हो रही हैं |

112) हरेक पदार्थ पर से अपने मोह को हटा लो और एक सत्य पर, एक तथ्य पर, अपने ईश्वर पर समग्र ध्यान को केन्द्रित करो | तुरन्त आपको आत्म-साक्षात्कार होगा |

113) जैसे बड़े होते-होते बचपन के खेलकूद छोड़ देते हो, वैसे ही संसार के खेलकूद छोड़कर आत्मानन्द का उपभोग करना चाहिये | जैसे अन्न व जल का सेवन करते हो, वैसे ही आत्म-चिन्तन का निरन्तर सेवन करना चाहिये | भोजन ठीक से होता है तो तृप्ति की डकार आती है वैसे ही यथार्थ आत्मचिन्तन होते ही आत्मानुभव की डकार आयेगी, आत्मानन्द में मस्त होंगे | आत्मज्ञान के सिवा शांति का कोई उपाय नहीं |

114) आत्मज्ञानी के हुक्म से सूर्य प्रकाशता है | उनके लिये इन्द्र पानी बरसाता है | उन्हीं के लिये पवन दूत बनकर गमनागमन करता है | उन्हीं के आगे समुद्र रेत में अपना सिर रगड़ता है |

115) यदि आप अपने आत्मस्वरूप को परमात्मा समझो और अनुभव करो तो आपके सब विचार व मनोरथ सफल होंगे, उसी क्षण पूर्ण होंगे |

116) राजा-महाराजा, देवी-देवता, वेद-पुराण आदि जो कुछ हैं वे आत्मदर्शी के संकल्पमात्र हैं |

117) जो लोग प्रतिकूलता को अपनाते हैं, ईश्वर उनके सम्मुख रहते हैं | ईश्वर जिन्हें अपने से दूर रखना चाहते हैं, उन्हें अनुकूल परिस्थितियाँ देते हैं | जिसको सब वस्तुएँ अनुकूल एवं पवित्र, सब घटनाएँ लाभकारी, सब दिन शुभ, सब मनुष्य देवता के रूप में दिखते हैं वही पुरुष तत्वदर्शी है |

118) समता के विचार से चित्त जल्दी वश में होता है, हठ से नहीं |

119) ऐसे लोगों से सम्बन्ध रखो कि जिससे आपकी सहनशक्ति बढ़े, समझ की शक्ति बढ़े, जीवन में आने वाले सुख-दुःख की तरंगों का आपके भीतर शमन करने की ताकत आये, समता बढ़े, जीवन तेजस्वी बने |

120) लोग बोलते हैं कि ध्यान व आत्मचिन्तन के लिए हमें फुरसत नहीं मिलती | लेकिन भले मनुष्य ! जब नींद आती है तब सब महत्वपूर्ण काम भी छोड़कर सो जाना पड़ता है कि नहीं ? जैसे नींद को महत्व देते हो वैसे ही चौबीस घन्टों में से कुछ समय ध्यान व आत्मचिन्तन में भी बिताओ | तभी जीवन सार्थक होगा | अन्यथा कुछ भी हाथ नहीं लगेगा |

121) भूल जाओ कि तुम मनुष्य हो, अमुक जाति हो, अमुक उम्र हो, अमुक ड़िग्रीवाले हो, अमुक धन्धेवाले हो | तुम निर्गुण, निराकार, साक्षीरूप हो ऐसा दृढ़ निश्चय करो | इसीमें तमाम प्रकार की साधनाएँ, क्रियाएँ, योगादि समाविष्ट हो जाते हैं | आप सर्वव्यापक अखण्ड चैतन्य हो | सारे ज्ञान का यह मूल है |

122) दोष तभी दिखता जब हमारे लोचन प्रेम के अभावरूप पीलिया रोग से ग्रस्त होते हैं |

123) साधक यदि अभ्यास के मार्ग पर उसी प्रकार आगे बढ़ता जाये, जिस प्रकार प्रारम्भ में इस मार्ग पर चलने के लिए उत्साहपूर्वक कदम रखा था, तो आयुरूपी सूर्य अस्त होने से पहले जीवनरूपी दिन रहते ही अवश्य 'सोऽहम् सिद्धि' के स्थान तक पहुँच जाये |

124) लोग जल्दी से उन्नति क्यों नहीं करते ? क्योंकि बाहर के अभिप्राय एवं विचारधाराओं का बहुत बड़ा बोझ हिमालय की तरह उनकी पीठ पर लदा हुआ है |

125) अपने प्रति होने वाले अन्याय को सहन करते हुए अन्यायकर्ता को यदि क्षमा कर दिया जाये तो द्वेष प्रेम में परिणत हो जाता है |

126) साधना की शुरुआत श्रद्धा से होती है लेकिन समाप्ति ज्ञान से होनी चाहिये | ज्ञान माने स्वयंसहित सर्व ब्रह्मस्वरूप है ऐसा अपरोक्ष अनुभव |

127) अपने शरीर के रोम-रोम में से ॐ... का उच्चारण करो | पहले धीमे स्वर में प्रारम्भ करो | शुरु में ध्वनि गले से निकलेगी, फिर छाती से, फिर नाभि से और अन्त में रीढ़ की हड्डी के आखिरी छोर से निकलेगी | तब विद्युत के धक्के से सुषुम्ना नाड़ी तुरन्त खुलेगी | सब कीटाणुसहित तमाम रोग भाग खड़े होंगे | निर्भयता, हिम्मत और आनन्द का फव्वारा छूटेगा | हर रोज प्रातःकाल में स्नानादि करके सूर्योदय के समय किसी एक नियत स्थान में आसन पर पूर्वाभिमुख बैठकर

कम-से-कम आधा घन्टा करके तो देखो |

128) आप जगत के प्रभु बनो अन्यथा जगत आप पर प्रभुत्व जमा लेगा | ज्ञान के मुताबिक जीवन बनाओ अन्यथा जीवन के मुताबिक ज्ञान हो जायेगा | फिर युगों की यात्रा से भी दुःखों का अन्त नहीं आयेगा |

129) वास्तविक शिक्षण का प्रारंभ तो तभी होता है जब मनुष्य सब प्रकार की सहायताओं से विमुख होकर अपने भीतर के अनन्त स्रोत की तरफ अग्रसर होता है |

130) दृश्य प्रपंच की निवृति के लिए, अन्तःकरण को आनन्द में सरोबार रखने के लिए कोई भी कार्य करते समय विचार करो : 'मैं कौन हूँ और कार्य कौन कर रहा है ?' भीतर से जवाब मिलेगा : ' मन और शरीर कार्य करते हैं | मैं साक्षीस्वरूप हूँ |' ऐसा करने से कर्तापन का अहं पिघलेगा, सुख-दुःख के आघात मन्द होंगे |

131) राग-द्वेष की निवृति का क्या उपाय है ? उपाय यही है कि सारे जगत-प्रपंच को मनोराज्य समझो | निन्दा-स्तुति से, राग-द्वष से प्रपंच में सत्यता दृढ़ होती है |

132) जब कोई खूनी हाथ आपकी गरदन पकड़ ले, कोई शस्त्रधारी आपको कत्ल करने के लिए तत्पर हो जाये तब यदि आप उसके लिए प्रसन्नता से तैयार रहें, हृदय में किसी प्रकार का भय या विषाद उत्पन्न न हो तो समझना कि आपने राग-द्वेष पर विजय प्राप्त कर लिया है | जब आपकी दृष्टि पड़ते ही सिंहादि हिंसक जीवों की हिंसावृति गायब हो जाय तब समझना कि अब राग-द्वेष का अभाव हुआ है |

133) आत्मा के सिवाय अन्य कुछ भी नहीं है - ऐसी समझ रखना ही आत्मनिष्ठा है |

134) आप स्वप्नदृष्टा हैं और यह जगत आपका ही स्वप्न है | बस, जिस क्षण यह ज्ञान हो जायेगा उसी क्षण आप मुक्त हो जाएँगे |

135) दिन के चौबीसों घण्टों को साधनामय बनाने के लिये निकम्मा होकर व्यर्थ विचार करते हुए मन को बार-बार सावधान करके आत्मचिंतन में लगाओ | संसार में संलग्न मन को वहाँ से उठा कर आत्मा में लगाते रहो |

136) एक बार सागर की एक बड़ी तरंग एक बुलबुले की क्षुद्रता पर हँसने लगी | बुलबुले ने कहा : " ओ तरंग ! मैं तो छोटा हूँ फिर भी बहुत सुखी हूँ | कुछ ही देर में मेरी देह टूट जायेगी, बिखर

जायेगी | मैं जल के साथ जल हो जाऊँगा | वामन मिटकर विराट बन जाऊँगा | मेरी मुक्ति बहुत नजदीक है | मुझे आपकी स्थिति पर दया आती है | आप इतनी बड़ी हुई हो | आपका छुटकारा जल्दी नहीं होगा | आप भाग-भागकर सामनेवाली चट्टान से टकराओगी | अनेक छोटी-छोटी तरंगों में विभक्त हो जाओगी | उन असंख्य तरंगों में से अनन्त-अनन्त बुलबुलों के रूप में परिवर्तित हो जाओगी | ये सब बुलबुले फूटेंगे तब आपका छुटकारा होगा | बड़प्पन का गर्व क्यों करती हो ? " जगत की उपलब्धियों का अभिमान करके परमात्मा से दूर मत जाओ | बुलबुले की तरह सरल रहकर परमात्मा के साथ एकता का अनुभव करो |

137) जब आप ईर्ष्या, द्वेष, छिद्रान्वेषण, दोषारोपण, घृणा और निन्दा के विचार किसीके प्रति भेजते हैं तब साथ-ही-साथ वैसे ही विचारों को आमंत्रित भी करते हैं | जब आप अपने भाई की आँख में तिनका भोंकते हैं तब अपनी आँख में भी आप ताड़ भोंक रहे हैं |

138) शरीर अनेक हैं, आत्मा एक है | वह आत्मा-परमात्मा मुझसे अलग नहीं | मैं ही कर्ता, साक्षी व न्यायधीश हूँ | मैं ही कर्कश आलोचक हूँ और मैं ही मधुर प्रशंसक हूँ | मेरे लिये प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र व स्वच्छन्द है | बन्धन, परिच्छिन्नता और दोष मेरी दृष्टि में आते ही नहीं | मैं मुक्त हूँ...परम मुक्त हूँ और अन्य लोग भी स्वतंत्र हैं | ईश्वर मैं ही हूँ | आप भी वही हो |

139) जिस प्रकार बालक अपनी परछाईं में बेताल की कल्पना कर भय पाता है, उसी प्रकार जीव अपने ही संकल्प से भयभीत होता है और कष्ट पाता है |

140) कभी-कभी ऐसी भावना करो कि आपके सामने चैतन्य का एक महासागर लहरा रहा है | उसके किनारे खड़े रह कर आप आनंद से उसे देख रहे हैं | आपका शरीर सागर की सतह पर घूमने गया है | आपके देखते ही देखते वह सागर में डूब गया | इस समस्त परिस्थिति को देखने वाले आप, साक्षी आत्मा शेष रहते हैं | इस प्रकार साक्षी रूप में अपना अनुभव करो |

141) यदि हम चाहते हों कि भगवान हमारे सब अपराध माफ करें तो इसके लिए सुगम साधना यही है कि हम भी अपने संबंधित सब लोगों के सब अपराध माफ कर दें | कभी किसी के दोष या अपराध पर दृष्टि न डालें क्योंकि वास्तव में सब रूपों में हमारा प्यारा ईष्टदेव ही क्रीड़ा कर रहा है |

142) पूर्ण पवित्रता का अर्थ है बाह्य प्रभावों से प्रभावित न होना | सांसारिक मनोहरता एवं घृणा से परे रहना, राजी-नाराजगी से अविचल, किसी में भेद न देखना और आत्मानुभव के द्वारा आकर्षणों व त्यागों से अलिप्त रहना | यही वेदान्त का, उपनिषदों का

रहस्य है |

143) ईश्वर साक्षात्कार तभी होगा जब संसार की दृष्टि से प्रतीत होने वाले बड़े-से-बड़े वैरियों को भी क्षमा करने का आपका स्वभाव बन जायेगा |

144) चालू व्यवहार में से एकदम उपराम होकर दो मिनट के लिए विराम लो | सोचो कि ' मैं कौन हूँ ? सर्दी-गर्मी शरीर को लगती है | भूख-प्यास प्राणों को लगती है | अनुकूलता-प्रतिकूलता मन को लगती है | शुभ-अशुभ एवं पाप-पुण्य का निर्णय बुद्धि करती है | मैं न शरीर हूँ, न प्राण हूँ, न मन हूँ, न बुद्धि हूँ | मैं तो हूँ इन सबको सत्ता देने वाला, इन सबसे न्यारा निर्लेप आत्मा |'

145) जो मनुष्य निरंतर 'मैं मुक्त हूँ...' ऐसी भावना करता है वह मुक्त ही है और 'मैं बद्ध हूँ...' ऐसी भावना करनेवाला बद्ध ही है |

146) आप निर्भय हैं, निर्भय हैं, निर्भय हैं | भय ही मृत्यु है | भय ही पाप है | भय ही नर्क है | भय ही अधर्म है | भय ही व्यभिचार है | जगत में जितने असत् या मिथ्या भाव हैं वे सब इस भयरूपी शैतान से पैदा हुए हैं |

147) परहित के लिए थोड़ा काम करने से भी भीतर की शक्तियाँ जागृत होती हैं | दूसरों के कल्याण के विचारमात्र से हृदय में एक सिंह के समान बल आ जाता है |

148) हम यदि निर्भय होंगे तो शेर को भी जीतकर उसे पाल सकेंगे | यदि डरेंगे तो कुत्ता भी हमें फ़ाड़ खायेगा |

149) प्रत्येक क्रिया, प्रत्येक व्यवहार, प्रत्येक प्राणी ब्रह्मस्वरूप दिखे, यही सहज समाधि है |

150) जब कठिनाईयाँ आयें तब ऐसा मानना कि मुझ में सहन शक्ति बढ़ाने के लिए ईश्वर ने ये संयोग भेजे हैं | कठिन संयोगों में हिम्मत रहेगी तो संयोग बदलने लगेंगे | विषयों में राग-द्वेष रह गया होगा तो वह विषय कसौटी के रूप में आगे आयेंगे और उनसे पार होना पड़ेगा |

151) तत्वदृष्टि से न तो आपने जन्म लिया, न कभी लेंगे | आप तो अनंत हैं, सर्वव्यापी हैं, नित्यमुक्त, अजर-अमर, अविनाशी हैं | जन्म-मृत्यु का प्रश्न ही गलत है, महा-

मूर्खतापूर्ण है |जहाँ जन्म ही नहीं हुआ वहाँ मृत्यु हो ही कैसे सकती है ?

152) आप ही इस जगत के ईश्वर हो |आपको कौन दुर्बल बना सकता है ? जगत में आप ही एकमात्र सत्ता हो |आपको किसका भय ? खड़े हो जाओ |मुक्त हो जाओ |ठीक से समझ लो कि जो कोई विचार या शब्द आपको दुर्बल बनाता है, वही एकमात्र अशुभ है |मनुष्य को दुर्बल व भयभीत करनेवाला जो कुछ इस संसार में है, वह पाप है |

153) आप अपना कार्य या कर्तव्य करो लेकिन न उसके लिए कोई चिन्ता रहे, न ही कोई इच्छा | अपने कार्य में सुख का अनुभव करो क्योंकि आपका कार्य स्वयं सुख या विश्राम है | आपका कार्य आत्मानुभव का ही दूसरा नाम है | कार्य में लगे रहो | कार्य आपको आत्मानुभव कराता है | किसी अन्य हेतु से कार्य न करो | स्वतंत्र वृत्ति से अपने कार्य पर डटे जाओ | अपने को स्वतंत्र समझो, किसीके कैदी नहीं |

154) यदि आप सत्य के मार्ग से नहीं हटते तो शक्ति का प्रवाह आपके साथ है, समय आपके साथ है, क्षेत्र आपके साथ है | लोगों को उनके भूतकाल की महिमा पर फूलने दो, भविष्यकाल की सम्पूर्ण महिमा आपके हाथ में है |

155) जब आप दिव्य प्रेम के साथ चाण्डाल में, चोर में, पापी में, अभ्यागत में और सबमें प्रभु के दर्शन करेंगे तब आप भगवान श्री कृष्ण के प्रेमपात्र बन जायेंगे |

156) आचार्य गौड़पाद ने स्पष्ट कहा : "आप सब आपस में भले ही लड़ते रहें लेकिन मेरे साथ नहीं लड़ सकेंगे | आप सब लोग मेरे पेट में हैं | मैं आत्मस्वरूप से सर्वव्याप्त हूँ |

157) मनुष्य सभी प्राणियों में श्रेष्ठ है, सब देवताओं से भी श्रेष्ठ है | देवताओं को भी फिर से धरती पर आना पड़ेगा और मनुष्य शरीर प्राप्त करके मुक्ति प्राप्त करनी होगी |

158) निश्चिन्तता के दो सूत्र : जो कार्य करना जरूरी है उसे पूरा कर दो | जो बिनजरूरी है उसे भूल जाओ |

159) सेवा-प्रेम-त्याग ही मनुष्य के विकास का मूल मंत्र है | अगर यह मंत्र आपको जँच जाये तो सभी के प्रति सदभाव रखो और शरीर से किसी-न-किसी व्यक्ति को बिना किसी मतलब के सहयोग देते रहो | यह नहीं कि "जब मेरी बात मानेंगे तब मैं सेवा करूँगा | अगर प्रबन्धक मेरी बात नहीं मानते तो मैं सेवा नहीं करूँगा |"
भाई ! तब तो तुम सेवा नहीं कर पाओगे | तब तो तुम अपनी बात मनवा कर अपने अहं की पूजा ही

करोगे |

160) जैसे स्वप्न मिथ्या है वैसे ही यह जाग्रत अवस्था भी स्वप्नवत ही है, मिथ्या है | हरेक को अपने इस स्वप्न से जागना है | सदगुरु बार-बार जगा रहे हैं लेकिन जाग कर वापस सो न जाएँ ऐसा पुरुषार्थ तो हमें ही करना होगा |

161) सदा प्रसन्नमुख रहो | मुख को कभी मलिन मत करो | निश्चय कर लो कि आपके लिये शोक ने इस जगत में जन्म नहीं लिया है | आनन्दस्वरूप में चिन्ता का स्थान ही कहाँ है ?

162) समग्र ब्रह्माण्ड एक शरीर है | समग्र संसार एक शरीर है | जब तक आप प्रत्येक के साथ एकता का अनुभव करते रहेंगे तब तक सब परिस्थितियाँ और आस-पास की चीज़ें, हवा और समुद्र की लहरें भी आपके पक्ष में रहेंगी |

163) आपको जो कुछ शरीर से, बुद्धि से या आत्मा से कमजोर बनाये, उसको विष की तरह तत्काल त्याग दो | वह कभी सत्य नहीं हो सकता | सत्य तो बलप्रद होता है, पावन होता है, ज्ञानस्वरूप होता है | सत्य वह है जो शक्ति दे |

164) साधना में हमारी अभिरुचि होनी चाहिये, साधना की तीव्र माँग होनी चाहिये |

165) दूसरों के दोषों की चर्चा मत करो, चाहे वे कितने भी बड़े हों | किसी के दोषों की चर्चा करके आप उसका किसी भी प्रकार भला नहीं करते बल्कि उसे आघात पहुँचाते हैं और साथ-ही-साथ अपने आपको भी |

166) इस संसार को सत्य समझना ही मौत है | आपका असली स्वरूप तो आनन्दस्वरूप आत्मा है | आत्मा के सिवा संसार जैसी कोई चीज ही नहीं है | जैसे सोया हुआ मनुष्य स्वप्न में अपनी एकता नहीं जानता अपितु अपने को अनेक करके देखता है वैसे ही आनन्दस्वरूप आत्मा जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति- इन तीन स्वरूपों को देखते हुए अपनी एकता, अद्वितीयता का अनुभव नहीं करता |

167) मनोजय का उपाय है : अभ्यास और वैराग्य | अभ्यास माने प्रयत्नपूर्वक मन को बार-बार परमात्म-चिंतन में लगाना और वैराग्य माने मन को संसार के पदार्थों की ओर से वापस लौटाना |

168) किसी से कुछ मत माँगो | देने के लिये लोग आपके पीछे-पीछे घूमेंगे | मान नहीं

चाहोगे तो मान मिलेगा | स्वर्ग नहीं चाहोगे तो स्वर्ग के दूत आपके लिये विमान लेकर आयेंगे | उसको भी स्वीकार नहीं करोगे तो ईश्वर आपको अपने हृदय से लगायेंगे |

169) कभी-कभी उदय या अस्त होते हुए सूर्य की ओर चलो | नदी, सरोवर या समुद्र के तट पर अकेले घूमने जाओ | ऐसे स्थानों की मुलाकात लो जहाँ शीतल पवन मन्द-मन्द चल रही हो | वहाँ परमात्मा के साथ एकस्वर होने की सम्भावना के द्वार खुलते हैं |

170) आप ज्यों-ही इच्छा से ऊपर उठेते हो, त्यों-ही आपका इच्छित पदार्थ आपको खोजने लगता है | अतः पदार्थ से ऊपर उठो | यही नियम है | ज्यों-ज्यों आप इच्छुक, भिक्षुक, याचक का भाव धारण करते हो, त्यों-त्यों आप ठुकराये जाते हो |

171) प्रकृति के प्रत्येक पदार्थ को देखने के लिये प्रकाश जरूरी है | इसी प्रकार मन, बुद्धि, इन्द्रियों को अपने-अपने कार्य करने के लिये आत्म-प्रकाश की आवश्यकता है क्योंकि बाहर का कोई प्रकाश मन, बुद्धि, इन्द्रिय, प्राणादि को चेतन करने में समर्थ नहीं |

172) जैसे स्वप्नदृष्टा पुरुष को जागने के बाद स्वप्न के सुख-दुःख, जन्म-मरण, पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म आदि स्पर्श नहीं करते क्योंकि वह सब खुद ही है | खुद के सिवाय स्वप्न में दूसरा कुछ था ही नहीं | वैसे ही जीवन्मुक्त ज्ञानवान पुरुष को सुख-दुःख, जन्म-मरण, पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म स्पर्श नहीं करते क्योंकि वे सब आत्मस्वरूप ही हैं |

173) वही भूमा नामक आत्मज्योति कुत्तों में रह कर भौंक रही है, सुअर में रह कर घूर रही है, गधों में रह कर रेंक रही है लेकिन मूर्ख लोग शरीरों पर ही दृष्टि रखते हैं, चैतन्य तत्व पर नहीं |

174) मनुष्य जिस क्षण भूत-भविष्य की चिन्ता का त्याग कर देता है, देह को सीमित और उत्पत्ति-विनाशशील जानकर देहाभिमान को त्याग देता है, उसी क्षण वह एक उच्चतर अवस्था में पहुँच जाता है | पिंजरे से छूटकर गगनविहार करते हुए पक्षी की तरह मुक्ति का अनुभव करता है |

175) समस्त भय एवं चिन्ताएँ आपकी इच्छाओं का प्रणाम हैं | आपको भय क्यों लगता है ? क्योंकि आपको आशंका रहती है कि अमुक चीज कहीं चली न जाये | लोगों के हास्य से आप डरते हैं क्योंकि आपको यश की अभिलाषा है, कीर्ति में आसक्ति है | इच्छाओं को तिलांजलि दे दो | फिर देखो मजा ! कोई जिम्मेदारी नहीं...कोई भय नहीं |

176) देखने में अत्यंत कुरुप, काला-कलूटा, कुबड़ा और तेज स्वभाव का मनुष्य भी आपका ही स्वरूप है | आप इस तथ्य से मुक्त नहीं | फिर घृणा कैसी ? कोई लावण्यमयी सुंदरी, सृष्टि की

शोभा के समान, अति विलासभरी अप्सरा भी आपका ही स्वरूप है | फिर आसक्ति किसकी ? आपकी ज्ञानेन्द्रियाँ उनको आपसे अलग करके दिखाती हैं | ये इन्द्रियाँ झूठ बोलनेवाली हैं | उनका कभी विश्वास मत करो | अतः सब कुछ आप ही हो |

177) मानव के नाते हम साधक हैं | साधक होने के नाते सत्य को स्वीकर करना हमारा स्वधर्म है | सत्य यही है कि बल दूसरों के लिये है, ज्ञान अपने लिये है और विश्वास परमात्मा से सम्बन्ध जोड़ने के लिये है |

178) अपनी आत्मा में डूब जाना यह सबसे बड़ा परोपकार है |

179) आप सदैव मुक्त हैं, ऐसा विश्वास दृढ़ करो तो आप विश्व के उद्धारक हो जाते हो | आप यदि वेदान्त के स्वर के साथ स्वर मिलाकर निश्चय करो : 'आप कभी शरीर न थे | आप नित्य, शुद्ध, बुद्ध आत्मा हो...' तो अखिल ब्रह्माण्ड के मोक्षदाता हो जाते हो |

180) कृपा करके उन स्वार्थमय उपायों और अभिप्रायों को दूर फेंक दो जो आपको परिच्छिन्न रखते हैं | सब वासनाएँ राग हैं | व्यक्तिगत या शरीरगत प्रेम आसक्ति है | उसे फेंक दो | स्वयं पवित्र हो जाओ | आपका शरीर स्वस्थ और बुद्धि पूर्णस्वरूप हो जायेगी |

181) यदि संसार के सुख व पदार्थ प्राप्त हों तो आपको कहना चाहिये : 'ओ शैतान हट जा मेरे सामने से | तेरे हाथ से मुझे कुछ नहीं चाहिये |' तब देखो कि आप कैसे सुखी हो जाते हो ! परमात्मा-प्राप्त किसी महापुरुष पर विश्वास रखकर अपनी जीवनडोरी निःशंक बन उनके चरणों में सदा के लिये रख दो | निर्भयता आपके चरणों की दासी बन जायेगी |

182) जिसने एक बार ठीक से जान लिया कि जगत मिथ्या है और भ्रान्ति से इसकी प्रतीति हो रही है, उसको कभी दुःख नहीं होता | जगत में कभी आसक्ति नहीं होती | जगत के मिथ्यात्व के निश्चय का नाम ही जगत का नाश है |

183) अपने स्वरूप में लीन होने मात्र से आप संसार के सम्राट बन जायेंगे | यह सम्राटपद केवल इस संसार का ही नहीं, समस्त लोक-परलोक का सम्राटपद होगा |

184) 'हे जनक! चाहे देवाधिदेव महादेव आकर आपको उपदेश दें या भगवान विष्णु आकर उपदेश दें अथवा ब्रह्माजी आकर उपदेश दें लेकिन आपको कदापि सुख न होगा | जब विषयों का त्याग करोगे तभी सच्ची शांति व आनंद प्राप्त होंगे |'

185) जिस प्रभु ने हमें मानव जीवन देकर स्वाधीनता दी कि हम जब चाहें तब धर्मात्मा होकर, भक्त होकर, जीवन्मुक्त होकर, कृतकृत्य हो सकते हैं- उस प्रभु की महिमा गाओ | गाओ नहीं, तो सुनो | सुनो भी नहीं, गाओ भी नहीं तो स्वीकार कर लो |

186) चाहे समुद्र के गहरे तल में जाना पड़े, साक्षात मृत्यु का मुकाबला करना पड़े, अपने आत्मप्राप्ति के उद्देश्य की पूर्ति के लिये अडिग रहो | उठो, साहसी बनो, शक्तिमान बनो | आपको जो बल व सहायता चाहिये वह आपके भीतर ही है |

187) जब-जब जीवन सम्बन्धी शोक और चिन्ता घेरने लगे तब-तब अपने आनन्दस्वरूप का गान करते-करते उस मोह-माया को भगा दो |

188) जब शरीर में कोई पीड़ा या अंग में जख्म हो तब 'मैं आकाशवत् आकाशरहित चेतन हूँ...' ऐसा दृढ़ निश्चय करके पीड़ा को भूल जाओ |

189) जब दुनिया के किसी चक्कर में फँस जाओ तब 'मैं निर्लेप नित्य मुक्त हूँ...' ऐसा दृढ़ निश्चय करके उस चक्कर से निकल जाओ |

190) जब घर-बार सम्बन्धी कोई कठिन समस्या व्याकुल करे तब उसे मदारी का खेल समझकर, स्वयं को निःसंग जानकर उस बोझ को हल्का कर दो |

191) जब क्रोध के आवेश में आकर कोई अपमानयुक्त वचन कहे तब अपने शांतिमय स्वरूप में स्थिर होकर मन में किसी भी क्षोभ को पैदा न होने दो |

192) उत्तम अधिकारी जिज्ञासु को चाहिये कि वह ब्रह्मवेत्ता सदगुरु के पास जाकर श्रद्धा पूर्वक महावाक्य सुने | उसका मनन व निदिध्यासन करके अपने आत्मस्वरूप को जाने | जब आत्मस्वरूप का साक्षात्कार होता है तब ही परम विश्रान्ति मिल सकती है, अन्यथा नहीं | जब तक ब्रह्मवेत्ता महापुरुष से महावाक्य प्राप्त न हो तब तक वह मन्द अधिकारी है | वह अपने हृदयकमल में परमात्मा का ध्यान करे, स्मरण करे, जप करे | इस ध्यान-जपादि के प्रसाद से उसे ब्रह्मवेत्ता सदगुरु प्राप्त होंगे |

193) मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार छाया की तरह जड़ हैं, क्षणभंगुर हैं क्योंकि वे उत्पन्न होते हैं और लीन भी हो जाते हैं | जिस चैतन्य की छाया उसमें पड़ती है वह परम चैतन्य सबका आत्मा है | मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार का अभाव हो जाता है लेकिन उसका अनुभव करनेवाले का अभाव कदापि नहीं होता |

194)	आप अपनी शक्ति को उच्चातिउच्च विषयों की ओर बहने दो | इससे आपके पास वे बातें सोचने का समय ही नहीं मिलेगा जिससे कामुकता की गंध आती हो |

195)	अपराधों के अनेक नाम हैं : बालहत्या, नरहत्या, मातृहत्या, गौहत्या इत्यादि | परन्तु प्रत्येक प्राणी में ईश्वर का अनुभव न करके आप ईश्वरहत्या का सबसे बड़ा अपराध करते हैं |

196)	सेवा करने की स्वाधीनता मनुष्यमात्र को प्राप्त है | अगर वह करना ही न चाहे तो अलग बात है | सेवा का अर्थ है : मन-वाणी-कर्म से बुराईरहित हो जाना यह विश्व की सेवा हो गई | यथाशक्ति भलाई कर दो यह समाज की सेवा हो गई | भलाई का फल छोड़ दो यह अपनी सेवा हो गई | प्रभु को अपना मानकर स्मृति और प्रेम जगा लो यह प्रभु की सेवा हो गई | इस प्रकार मनुष्य अपनी सेवा भी कर सकता है, समाज की सेवा भी कर सकता है, विश्व की सेवा भी कर सकता है और विश्वेश्वर की सेवा भी कर सकता है |

197)	आत्मा से बाहर मत भटको, अपने केन्द्र में स्थिर रहो, अन्यथा गिर पड़ोगे | अपने-आपमें पूर्ण विश्वास रखो | आत्म-केन्द्र पर अचल रहो | फिर कोई भी चीज आपको विचलित नहीं कर सकती |

198)	सदा शांत, निर्विकार और सम रहो | जगत को खेलमात्र समझो | जगत से प्रभावित मत हो | इससे आप हमेशा सुखी रहोगे | फिर कुछ बढ़ाने की इच्छा नहीं होगी और कुछ कम होने से दुःख नहीं होगा |

199)	समर्थ सदगुरु के समक्ष सदा फूल के भाँति खिले हुए रहो | इससे उनके अन्दर संकल्प होगा कि, 'यह तो बहुत उत्साही साधक है, सदा प्रसन्न रहता है |' उनके सामर्थ्यवान् संकल्प से आपकी वह कृत्रिम प्रसन्नता भी वास्तविक प्रसन्नता में बदल जायेगी |

200)	यदि रोग को भी ईश्वर का दिया मानो तो प्रारब्ध-भोग भी हो जाता है और कष्ट तप का फल देता है | इससे ईश्वर-कृपा की प्राप्ति होती है | व्याकुल मत हो | 'कैप्सूल' और 'इन्जेक्शन' आधीन मत हो |

201)	साधक को चाहिये कि अपने लक्ष्य को दृष्टि में रखकर साधना-पथ पर तीर की तरह सीधा चला जाये | न इधर देखे न उधर | दृष्टि यदि इधर-उधर जाती हो तो समझना कि निष्ठा स्थिर नहीं है |

202) आपने अपने जीवन में हजारों स्वप्न देखे होंगे लेकिन वे आपके जीवन के अंश नहीं बन जाते | इसी प्रकार ये जाग्रत जगत के आडम्बर आपकी आत्मा के समक्ष कोई महत्त्व नहीं रखते |

203) एक आत्मा को ही जानो, अन्य बातों को छोड़ो | धीर साधक को चाहिये कि वह सावधान होकर आत्मनिष्ठा बढ़ाये, अनेक शब्दों का चिन्तन व भाषण न करे क्योंकि वह तो केवल मन-वाणी को परिश्रम देनेवाला है, असली साधना नहीं है |

204) जो पुरुष जन-समूह से ऐसे डरे जैसे साँप से डरता है, सम्मान से ऐसे डरे जैसे नर्क से डरता है, स्त्रियों से ऐसे डरे जैसे मुर्दे से डरता है, उस पुरुष को देवतागण ब्राह्मण मानते हैं |

205) जैसे अपने शरीर के अंगों पर क्रोध नहीं आता वैसे शत्रु, मित्र व अपनी देह में एक ही आत्मा को देखनेवाले विवेकी पुरुष को कदापि क्रोध नहीं आता |

206) 'मैंने तो शरीर को ईश्वरार्पण कर दिया है | अब उसकी भूख-प्यास से मुझे क्या? समर्पित वस्तु में आसक्त होना महा पाप है |'

207) आप यदि दिव्य दृष्टि पाना चहते हो तो आपको इन्द्रियों के क्षेत्र का त्याग करना होगा |

208) प्रलयकाल के मेघ की गर्जना हो, समुद्र उमड़ पडे, बारहों सूर्य तपायमान हो जायें, पहाड़ से पहाड़ टकरा कर भयानक आवाज हो तो भी ज्ञानी के निश्चय में द्वैत नहीं भासता क्योंकि द्वैत है ही नहीं | द्वैत तो अज्ञानी को भासता है |

209) सत्य को स्वीकार करने से शांति मिलेगी | कुछ लोग योग्यता के आधार पर शांति खरीदना चाहते हैं | योग्यता से शांति नहीं मिलेगी, योग्यता के सदुपयोग से शांति मिलेगी | कुछ लोग सम्पत्ति के आधार पर शांति सुरक्षित रखना चाहते हैं | सम्पत्ति से शांति नहीं मिलेगी, सम्पत्ति के सदुपयोग से शांति मिलेगी, वैसे ही विपत्ति के सदुपयोग से शांति मिलेगी |

210) तुच्छ हानि-लाभ पर आपका ध्यान इतना क्यों रहता है जिससे अनंत आनन्दस्वरूप आत्मा पर से ध्यान हट जाता है |

211) अपने अन्दर ही आनन्द प्राप्त करना यद्यपि कठिन है परन्तु बाह्य विषयों से आनन्द प्राप्त करना तो असम्भव ही है |

212) 'मैं संसार का प्रकाश हूँ | प्रकाश के रूप में मैं ही सब वस्तुओं में व्याप्त हूँ |' नित्य इन विचारों का चिन्तन करते रहो | ये पवित्र विचार आपको परम पवित्र बना देंगे |

213) जो वस्तु कर्म से प्राप्त होती है उसके लिये संसार की सहायता तथा भविष्य की आशा की आवश्यकता होती है परन्तु जो वस्तु त्याग से प्राप्त होती है, उसके लिये न संसार की सहायता चाहिये, न भविष्य की आशा |

214) आपको जब तक बाहर चोर दिखता है तब तक जरूर भीतर चोर है | जब दूसरे लोग ब्रह्म से भिन्न, अयोग्य, खराब, सुधारने योग्य दिखते हैं तब तक ओ सुधार का बीड़ा उठाने वाले ! तू अपनी चिकित्सा कर |

215) सफल वे ही होते हैं जो सदैव नतमस्तक एवं प्रसन्नमुख रहते हैं | चिन्तातुर-शोकातुर लोगों की उन्नति नहीं हो सकती | प्रत्येक कार्य को हिम्मत व शांति से करो | फिर देखो कि : 'यह कार्य शरीर मन और बुद्धि से हुआ | मैं उन सबको सत्ता देनेवाला चैतन्यस्वरूप हूँ |' ॐ... ॐ... का पावन गान करो |

216) किसी भी परिस्थिति में मन को व्यथित न होने दो | आत्मा पर विश्वास करके आत्मनिष्ठ बन जाओ | निर्भयता आपकी दासी बन कर रहेगी |

217) सत्संग से मनुष्य को साधना प्राप्त होती है, चाहे वह शांति के रूप में हो, चाहे मुक्ति के रूप में, चाहे सेवा के रूप में हो, प्रेम के रूप में हो, चाहे त्याग के रूप में हो |

218) भला-बुरा वही देखता है जिसके अन्दर भला-बुरा है | दूसरों के शरीरों को वही देखता है जो खुद को शरीर मानता है |

219) खबरदार ! आपने यदि अपने शरीर के लिये ऐश-आराम की इच्छा की, विलासिता एवं इन्द्रिय-सुख में अपना समय बरबाद किया तो आपकी खैर नहीं | ठीक से कार्य करते रहने की नीति अपनाओ | सफलता का पहला सिद्धांत है कार्य...विश्रामरहित कार्य...साक्षी भाव से कार्य | इस सिद्धांत को जीवन में चरितार्थ करोगे तो पता चलेगा कि छोटा होना जितना सरल है उतना ही बड़ा होना भी सहज है |

220) भूतकाल पर खिन्न हुए बिना, भविष्य की चिन्ता किये बिना वर्त्तमान में कार्य करो | यह भाव आपको हर अवस्था में प्रसन्न रखेगा हमें जो कुछ प्राप्त है उसका सदुपयोग ही अधिक प्रकाश पाने का साधन है |

221)	जब आप सफलता की ओर पीठ कर लेते हो, परिणाम की चिन्ता का त्याग कर देते हो, सम्मुख आये हुए कर्त्तव्य पर अपनी उद्योगशक्ति एकाग्र करते हो तब सफलता आपके पीछे-पीछे आ जाती है | अतः सफलता आपको खोजेगी |

222)	वृत्ति तब तक एकाग्र नहीं होगी जब तक मन में कभी एक आशा रहेगी तो कभी दूसरी | शांत वही हो सकता है जिसे कोई कर्त्तव्य या आवश्यकता घसीट न रही हो | अतः परम शांति पाने के लिये जीवन की आशा भी त्याग कर मन ब्रह्मानन्द में डुबो दो | आज से समझ लो कि यह शरीर है ही नहीं | केवल ब्रह्मानन्द का सागर लहरा रहा है |

223)	जिसकी पक्की निष्ठा है कि 'मैं आत्मा हूँ...' उसके लिये ऐसी कौन सी ग्रंथि है जो खुल न सके? ऐसी कोई ताकत नहीं जो उसके विरुद्ध जा सके |

224)	'मेरे भाग्य में नहीं था...ईश्वर की मर्जी...आजकल सत्संग प्राप्त नहीं होता...जगत खराब है...' ऐसे वचन हमारी कायरता व अन्तःकरण की मलिनता के कारण निकलते हैं | अतः नकारात्मक स्वभाव और दूसरों पर दोषारोपण करने की वृत्ति से बचो |

225)	आप जब भीतरवाले से नाराज होते हो तब जगत आपसे नाराज रहता है | जब आप भीतर अन्तर्यामी बन बैठे तो जगतरूपी पुतलीघर में फिर गड़बड़ कैसी ?

226)	जिस क्षण हम संसार के सुधारक बन खड़े होते हैं उसी क्षण हम संसार को बिगाड़नेवाले बन जाते हैं | शुद्ध परमात्मा को देखने के बजाय जगत को बिगड़ा हुआ देखने की दृष्टि बनती है | सुधारक लोग मानते हैं कि : 'भगवान ने जो जगत बनाया है वह बिगड़ा हुआ है और हम उसे सुधार रहे हैं |' वाह ! वाह ! धन्यवाद सुधारकों ! अपने दिल को सुधारो पहले | सर्वत्र निरंजन का दीदार करो | तब आपकी उपस्थिति मात्र से, आपकी दृष्टि मात्र से, अरे प्यारे ! आपको छूकर बहती हवा मात्र से अनन्त जीवों को शांति मिलेगी और अनन्त सुधार होगा | नानक, कबीर, महावीर, बुद्ध और लीलाशाह बापू जैसे महापुरुषों ने यही कुंजी अपनायी थी |

227)	वेदान्त में हमेशा कर्म का अर्थ होता है वास्तविक आत्मा के साथ एक होकर चेष्टा करना, अखिल विश्व के साथ एकस्वर हो जाना | उस अद्वितीय परम तत्व के साथ निःस्वार्थ संयोग प्राप्त करना ही एकमात्र सच्चा कर्म है, बाकी सब बोझ की गठरियाँ उठाना है |

228) अपनी वर्तमान अवस्था चाहे कैसी भी हो, उसको सर्वोच्च मानने से ही आपके हृदय में आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान का अनायास उदय होने लगेगा | आत्म-साक्षात्कार को मीलों दूर की कोई चीज समझकर उसके पीछे दौड़ना नहीं है, चिन्तित होना नहीं है | चिन्ता की गठरी उठाकर व्यथित होने की जरूरत नहीं है | जिस क्षण आप निश्चिन्तता में गोता मारोगे, उसी क्षण आपका आत्मस्वरूप प्रगट हो जायेगा | अरे ! प्रगट क्या होगा, आप स्वयं आत्मस्वरूप हो ही | अनात्मा को छोड़ दो तो आत्मस्वरूप तो हो ही |

229) सदा ॐकार का गान करो | जब भय व चिन्ता के विचार आयें तब किसी मस्त संत-फकीर, महात्मा के सान्निध्य का स्मरण करो | जब निन्दा-प्रशंसा के प्रसंग आयें तब महापुरुषों के जीवन का अवलोकन करो |

230) जिनको आप भयानक घटनाएँ एवं भयंकर आघात समझ बैठे हो, वास्तव में वे आपके प्रियतम आत्मदेव की ही करतूत है | समस्त भयजनक तथा प्राणनाशक घटनाओं के नाम-रूप तो विष के हैं लेकिन वे बनी हैं अमृत से |

231) मन में यदि भय न हो तो बाहर चाहे कैसी भी भय की सामग्री उपस्थित हो जाये, आपका कुछ बिगाड़ नहीं सकती | मन में यदि भय होगा तो तुरन्त बाहर भी भयजनक परिस्थियाँ न होते हुए भी उपस्थित हो जायेंगी | वृक्ष के तने में भी भूत दिखने लगेगा |

232) किसी भी परिस्थिति में दिखती हुई कठोरता व भयानकता से भयभीत नहीं होना चाहिए | कष्टों के काले बादलों के पीछे पूर्ण प्रकाशमय एकरस परम सत्ता सूर्य की तरह सदा विद्यमान है |

233) आप अपने पर कदापि अविश्वास मत करो | इस जगत में आप सब कुछ कर सकते हो | अपने को कभी दुर्बल मत मानो | आपके अन्दर तमाम शक्तियाँ छुपी हुई हैं |

234) यदि कोई मनुष्य आपकी कोई चीज़ को चुरा लेता है तो ड़रते क्यों हो ? वह मनुष्य और आप एक हैं | जिस चीज़ को वह चुराता है वह चीज़ आपकी और उसकी दोंनों की है |

235) जो खुद के सिवाय दूसरा कुछ देखता नहीं, सुनता नहीं, जानता नहीं, वह अनन्त है | जब तक खुद के सिवाय और किसी वस्तु का भान होता है, वह वस्तु सच्ची लगती है तब तक आप सीमित व शांत हैं, असीम और अनंत नहीं |

236) संसार मुझे क्या आनंद दे सकता है ? सम्पूर्ण आनंद मेरे भीतर से आया है | मैं ही सम्पूर्ण आनन्द हूँ ... सम्पूर्ण महिमा एवं सम्पूर्ण सुख हूँ |

237) जीवन की समस्त आवश्यकताएँ जीवन में उपस्थित हैं परन्तु जीवन को जब हम बाह्य रंगों में रंग देते हैं तब जीवन का वास्तविक रूप हम नहीं जान पाते |

238) निन्दकों की निन्दा से मैं क्यों मुरझाऊँ ? प्रशंसकों की प्रशंसा से मैं क्यों फूलूँ ? निन्दा से मैं घटता नहीं और प्रशंसा से मैं बढ़ता नहीं | जैसा हूँ वैसा ही रहता हूँ | फिर निन्दा-स्तुति से खटक कैसी ?

239) संसार व संसार की समस्याओं में जो सबसे अधिक फँसे हुए हैं उन्हीं को वेदान्त की सबसे अधिक आवश्यकता है | बीमार को ही औषधि की ज्यादा आवश्यकता है | क्यों जी, ठीक है न ?

240) जगत के पाप व अत्याचार की बात मत करो लेकिन अब भी आपको जगत में पाप दिखता है इसलिये रोओ |

241) हम यदि जान लें कि जगत में आत्मा के सिवाय दूसरा कुछ है ही नहीं और जो कुछ दिखता है वह स्वप्नमात्र है, तो इस जगत के दुःख-दारिद्रय, पाप-पुण्य कुछ भी हमें अशांत नहीं कर सकते |

242) विद्वानों, दार्शनिकों व आचार्यों की धमकी तथा अनुग्रह, आलोचना या अनुमति ब्रह्मज्ञानी पर कोई प्रभाव नहीं ड़ाल सकती |

243) हे व्यष्टिरूप अनन्त ! आप अपने पैरों पर खड़े रहने का साहस करो, समस्त विश्व का बोझ आप खिलौने की तरह उठा लोगे |

244) सिंह की गर्जना व नरसिंह की ललकार, तलवार की धार व साँप की फुफकार, तपस्वी की धमकी व न्यायधीश की फटकार...इन सबमें आपका ही प्रकाश चमक रहा है | आप इनसे भयभीत क्यों होते हो ? उलझन क्यों महसूस करते हो ? 'मेरी बिल्ली मुझको म्याऊँ' वाली बात क्यों होने देते हो?

245) संसार हमारा सिर्फ़ खिलोना ही है और कुछ नहीं | अबोध बालक ही खिलौनों से भयभीत होता है, आसक्ति करता है, विचारशील व्यक्ति नहीं |

246) जब तक अविद्या दूर नहीं होगी तब तक चोरी, जुआ, दारू, व्यभिचार, कभी बंद न होंगे, चाहे लाख कोशिश करो |

247) आप हमेशा अंदर का ध्यान रखो | पहले हमारा भीतरी पतन होता है | बाह्य पतन तो इसका परिणाम मात्र है |

248) त्याग से हमेशा आनंद मिलता है | जब तक आपके पास एक भी चीज़ बाकी है तब तक आप उस चीज़ के बंधन में बंधे रहोगे | आघात व प्रत्याघात हमेशा समान विरोधी होते हैं |

249) निश्चिंतता ही आरोग्यता की सबसे बड़ी दवाई है |

250) सुख अपने सिर पर दुख का मुकुट पहन कर आता है | जो सुख को अपनायेगा उसे दुख को भी स्वीकार करना पड़ेगा |

251) मैं (आत्मा) सबका द्द्रष्टा हूँ | मेरा द्द्रष्टा कोई नहीं |

252) हजारों में से कोई एक पुरुष भीतर से शांत चित्तवाला रहकर बाहर से संसारी जैसा व्यवहार कर सकता है |

253) सत्य के लिए यदि शरीर का त्याग करना पड़े तो कर देना | यही आखिरी ममता है जो हमें तोड़नी होगी |

254) भय, चिन्ता, बेचैनी से ऊपर उठो | आपको ज्ञान का अनुभव होगा |

255) आपको कोई भी हानि नहीं पहुँचा सकता | केवल आपके खयालात ही आपके पीछे पड़े हैं |

256) प्रेम का अर्थ है अपने पड़ोसी तथा संपर्क में आनेवालों के साथ अपनी वास्तविक अभेदता का अनुभव करना |

257) ओ प्यारे ! अपने खोये हुए आत्मा को एक बार खोज लो | धरती व आसमान के शासक आप ही हो |

258) सदैव सम और प्रसन्न रहना ईश्वर की सर्वोपरि भक्ति है |

259) जब तक चित्त में दृढ़ता न आ जाये कि शास्त्र की विधियों का पालन छोड़ देने से भी हृदय का यथार्थ भक्तिभाव नष्ट नहीं होगा, तब तक शास्त्र की विधियों को पालते रहो |

*

गुरु भक्ति एक अमोघ साधना

1. जन्म मरण के विषचक्र से मुक्त होने का कोई मार्ग नहीं है क्या ? सुख-दुःख, हर्ष-शोक, लाभ-हानि मान-अपमान की थप्पड़ों से बचने का कोई उपाय नहीं है क्या ?
है...अवश्य है | हे प्रिये आत्मन ! नाशवान पदार्थों से अपना मन वापिस लाकर सदगुरु के चरणकमलों में लगाओ | गुरुभक्तियोग का आश्रय लो | गुरुसेवा ऐसा अमोघ साधन है जिससे वर्त्तमान जीवन आनन्दमय बनता है और शाश्वत सुख के द्वार खुलते हैं |
गुरु सेवत ते नर धन्य यहाँ |
तिनकुं नहीं दुःख यहाँ न वहाँ ||

2. सच्चे सदगुरु की की हुई भक्ति शिष्य में सांसारिक पदार्थों के वैराग्य एवं अनासक्ति जगाती है, परमात्मा के प्रति प्रेम के पुष्प महकाती है |

3. प्रत्येक शिष्य सदगुरु की सेवा करना चाहता है लेकिन अपने ढंग से | सदगुरु चाहें उस ढंग से सेवा करने को कोई तत्पर नहीं |
जो विरला साधक, गुरु चाहें उस ढ़ंग से सेवा कर सकता है, उसे कोई कमी नहीं रहती | ब्रह्मनिष्ठ सदगुरु की सेवा से उनकी कृपा प्राप्त होती है और उस कृपा से न मिल सके ऐसा तीनों लोकों में कुछ भी नहीं है |

4. गुर शिष्य का सम्बन्ध पवित्रतम सम्बन्ध है | संसार के तमाम बन्धनों से छुड़ाकर वह मुक्ति के मार्ग पर प्रस्थान कराता है | यह सम्बन्ध जीवनपर्यन्त का सम्बन्ध है | यह बात अपने हृदय की डायरी में सुवर्ण-अक्षरों से लिख लो |

5. उल्लू सुर्य के प्रकाश के अस्तित्व को माने या न माने फिर भी सूर्य हमेशा प्रकाशता है | चंचल मन का मनुष्य माने या न माने लेकिन सदगुरु की परमकल्याणकारी कृपा सदैव बरसती ही रहती है |

6. सदगुरु की चरणरज में स्नान किये बिना केवल कठिन तपश्चर्या करने से या वेदों का

अध्यन करने से वेदान्त का रहस्य प्रकट नहीं होता, आत्मानंद का अमृत नहीं मिलता |

7. दर्शन शास्त्र के चाहे कितने ग्रन्थ पढ़ो, हजारों वर्षों तक हिमालय की गुफा में तप करो, वर्षों तक प्राणायाम करो, जीवनपर्यन्त शीर्षासन करो, समग्र विश्व में प्रवास करके व्याखान दो फिर भी सदगुरु की कृपा के बिना आत्मज्ञान नहीं होता |अतः निराभिमानी, सरल, निजानन्द में मस्त, दयालु स्वभाव के आत्म-साक्षात्कारी सदगुरु के चरणों में जाओ |जीवन को धन्य बनाओ |

8. सदगुरु की सेवा किये बिना शास्त्रों का अध्यन करना मुमुक्षु साधक के लिये समय बरबाद करने के बराबर है |

9. जिसको सदगुरु प्राप्त हुए हैं ऐसे शिष्य के लिये इस विश्व में कुछ भी अप्राप्य नहीं है |सदगुरु शिष्य को मिली हुई परमात्मा की अमूल्य भेंट हैं |अरे नहीं...नहीं वे तो शिष्य के समक्ष साकार रूप में प्रकट हुए परमात्मा स्वयं हैं |

10. सदगुरु के साथ एक क्षण किया हुआ सत्संग लाखों वर्षों के तप से अनन्त गुना श्रेष्ठ है |आँख के निमेषमात्र में सदगुरु की अमृतवर्षी दृष्टि शिष्य के जन्म-जन्म के पापों को जला सकती है |

11. सदगुरु जैसा प्रेमपूर्ण, कृपालु, हितचिन्तक, विश्वभर में दूसरा कोई नहीं है |

12. बाढ़ के समय यात्री यदि तूफानी नदी को बिना नाव के पार कर सके तो साधक भी बिना सदगुरु के अपने जीवन के आखिरी लक्ष्य को सिद्ध कर सकता है |यानी ये दोनों बातें सम्भव हैं |
अतः प्यारे साधक ! मनमुखी साधना की जिद्द करना छोड़ दो |गुरुमुखी साधना करने में ही सार है |

13. सदगुरु के चरणकमलों का आश्रय लेने से जिस आनन्द का अनुभव होता है उसके आगे त्रिलोकी का साम्राज्य तुच्छ है |

14. आत्म-साक्षात्कार के मार्ग में सबसे महान शत्रु अहंभाव का नाश करने के लिए सदगुरु की आज्ञा का पालन अमोघ शस्त्र है |

15. रसोई सीखने के लिये कोई सिखानेवाला चाहिये, विज्ञान और गणित सीखने के लिये

अध्यापक चाहिये तो क्या ब्रह्मविद्या सदगुरु के बिना ही सीख लोगे ?

16. सदगुरुकृपा की सम्पत्ति जैसा दूसरा कोई खजाना विश्वभर में नहीं |

17. सदगुरु की आज्ञा का उल्लंघन करना यह अपनी कब्र खोदने के बराबर है |

18. सदगुरु के कार्य को शंका की दृष्टि से देखना महापातक है |

19. गुरुभक्ति व गुरुसेवा - यें साधनारूपी नौका की दो पतवारें हैं |उनकी मदद से शिष्य संसारसागर को पार कर सकता है |

20. सदगुरु की कसौटी करना असंभव है |एक विवेकानन्द ही दूसरे विवेकानन्द को पहचाने सकते हैं |बुद्ध को जानने के लिये दूसरे बुद्ध की आवश्यकता रहती है |एक रामतीर्थ का रहस्य दूसरे रामतीर्थ ही पा सकते हैं |
अतः सदगुरु की कसौटी करने की चेष्टा छोड़कर उनको परिपूर्ण परब्रह्म परमात्मा मानो | तभी जीवन में वास्तविक लाभ होगा |

21. गुरुभक्तियोग का आश्रय लेकर आप अपनी खोई हुई दिव्यता को पुनः प्राप्त करो, सुख-दुःख, जन्म-मृत्यु आदि सब द्वन्द्वों से पार हो जाओ |

22. गुरुभक्तियोग माने गुरु की सेवा के द्वारा मन और विकारों पर नियंत्रण एवं पुनः संस्करण |

23. शिष्य अपने गुरु के चरणकमल में प्रणाम करता है |उन पर श्रेष्ठ फूलों की वर्षा करके उनकी स्तुति करता है :

“हे परम पूज्य पवित्र गुरुदेव! मुझे सर्वोच्च सुख प्राप्त हुआ है |मैं ब्रह्मनिष्ठा से जन्म-मृत्यु की परम्परा से मुक्त हुआ हूँ |मैं निर्विकल्प समाधि का शुद्ध सुख भोग रहा हूँ |जगत के किसी भी कोने में मैं मुक्तता से विचरण कर सकता हूँ |सब पर मेरी समदृष्टि है |

मैंने प्राकृत मन का त्याग किया है |मैंने सब संकल्पों एवं रुचि-अरुचि का त्याग किया है |अब मैं अखण्ड शांति में विश्रांति पा रहा हूँ ... आनन्दमय हो रहा हूँ |मैं इस पूर्ण अवस्था का वर्णन नहीं कर पाता |

हे पूज्य गुरुदेव ! मैं आवाक बन गया हूँ |इस दुस्तर भवसागर को पार करने में आपने

मुझे सहायता की है |अब तक मुझे केवल अपने शरीर में ही सम्पूर्ण विश्वास था |मैंने विभिन्न योनियों में असंख्य जन्म लिये |ऐसी सर्वोच्च निर्भय अवस्था मुझे कौन से पवित्र कर्मों के कारण प्राप्त हुई है, यह मैं नहीं जानता |सचमुच यह एक दुर्लभ भाग्य है | यह एक महान उत्कृष्ट लाभ है |

अब मैं आनन्द से नाचता हूँ |मेरे सब दुःख नष्ट हो गये |मेरे सब मनोरथ पूर्ण हुए हैं | मेरे कार्य सम्पन्न हुए हैं |मैंने सब वांछित वस्तुएँ प्राप्त की हैं |मेरी इच्छा परिपूर्ण हुई है |

आप मेरे सच्चे माता-पिता हो |मेरी वर्तमान स्थिति में मैं दूसरों के समक्ष किस प्रकार प्रकट कर सकूँ ? सर्वत्र सुख और आनन्द का अनन्त सागर मुझे लहराता हुआ दिख रहा है |

मेरे अंतःचक्षु जिससे खुल गये वह महावाक्य **'तत्त्वमसि'** है |उपनिषदों एवं वेदान्तसूत्रों को भी धन्यवाद |जिन्होंने ब्रह्मनिष्ठ गुरु का एवं उपनिषदों के महावाक्यों का रूप धारण किया है |ऐसे श्री व्यासजी को प्रणाम ! श्री शंकराचार्य को प्रणाम !

सांसारिक मनुष्य के सिर पर गुरु के चरणामृत का एक बिन्दु भी गिरे तो भी उसके स्ब दुःखों का नाश होता है |यदि एक ब्रह्मनिष्ठ पुरुष को वस्त्र पहनाये जायें तो सारे विश्व को वस्त्र पहनाने एवं भोजन करवाने के बराबर है क्योंकि ब्रह्मनिष्ठ पुरुष सचराचर विश्व में व्याप्त हैं |सबमें वे ही हैं |"
ॐ... ॐ ... ॐ ...

स्वामी शिवानंद जी

*

श्री राम-वशिष्ठ संवाद

श्री वशिष्ठ जी कहते हैं :

"हे रघुकुलभूषण श्री राम! अनर्थ स्वरूप जितने सांसारिक पदार्थ हैं वे सब जल में तरंग के समान विविध रूप धारण करके चमत्कार उत्पन्न करते हैं अर्थात ईच्छाएँ उत्पन्न करके जीव को मोह में फँसाते हैं |परंतु जैसे सभी तरंगें जल स्वरूप ही हैं उसी प्रकार सभी पदार्थ वस्तुतः नश्वर स्वभाव वाले हैं |

बालक की कल्पना से आकाश में यक्ष और पिशाच दिखने लगते हैं परन्तु बुद्धिमान मनुष्य के लिए उन यक्षों और पिशाचों का कोई अर्थ नहीं |इसी प्रकार अज्ञानी के चित्त में यह जगत सत्य हो ऐसा लगता है जबकि हमारे जैसे ज्ञानियों के लिये यह जगत कुछ भी नहीं |

यह समग्र विश्व पत्थर पर बनी हुई पुतलियों की सेना की तरह रूपालोक तथा अंतर-बाह्य विषयों से शून्य है |इसमें सत्यता कैसी ? परन्तु अज्ञानियों को यह विश्व सत्य लगता है |"

वशिष्ठ जी बोले : "श्री राम ! जगत को सत्य स्वरूप में जानना यह भ्रांति है, मूढ़ता है |उसे मिथ्या अर्थात कल्पित समझना यही उचित समझ है |

हे राघव ! त्वत्ता, अहंता आदि सब विभ्रम-विलास शांत, शिवस्वरूप, शुद्ध ब्रह्मस्वरूप ही हैं |इसलिये मुझे तो ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं दिखता |आकाश में जैसे जंगल नहीं वैसे ही ब्रह्म में जगत नहीं है |

हे राम ! प्रारब्ध वश प्राप्त कर्मों से जिस पुरुष की चेष्टा कठपुतली की तरह ईच्छाशून्य और व्याकुलतारहित होती हैं वह शान्त मनवाला पुरुष जीवन्मुक्त मुनि है | ऐसे जीवन्मुक्त ज्ञानी को इस जगत का जीवन बांस की तरह बाहर-भीतर से शून्य, रसहीन और वासना-रहित लगता है |

इस दृश्य प्रपंच में जिसे रुचि नहीं, हृदय में चिन्मात्र अदृश्य ब्रह्म ही अच्छा लगता है ऐसे पुरुष ने भीतर तथा बाहर शान्ति प्राप्त कर ली है और इस भवसागर से पार हो गया है |

रघुनंदन ! शस्त्रवेत्ता कहते हैं कि मन का ईच्छारहित होना यही समाधि है क्योंकि ईच्छाओं का त्याग करने से मन को जैसी शान्ति मिलती है ऐसी शान्ति सैकड़ों उपदेशों से भी नहीं मिलती | ईच्छा की उत्पत्ति से जैसा दुःख प्राप्त होता है ऐसा दुःख तो नरक में भी नहीं | ईच्छाओं की शान्ति से जैसा सुख होता है ऐसा सुख स्वर्ग तो क्या ब्रह्मलोक में भी नहीं होता |

अतः समस्त शास्त्र, तपस्या, यम और नियमों का निचोड़ यही है कि ईच्छामात्र दुःखदायी है और ईच्छा का शमन मोक्ष है |

प्राणी के हृदय में जैसी-जैसी और जितनी-जितनी ईच्छायें उत्पन्न होती हैं उतना ही दुखों से वह ड़रता रहता है | विवेक-विचार द्वारा ईच्छायें जैसे-जैसे शान्त होती जाती हैं वैसे-वैसे दुखरूपी छूत की बीमारी मिटती जाती है |

आसक्ति के कारण सांसारिक विषयों की ईच्छायें ज्यों-ज्यों गहनीभूत होती जाती हैं, त्यों-त्यों दुःखों की विषैली तरंगें बढ़ती जाती हैं | अपने पुरुषार्थ के बल से इस ईच्छारूपी व्याधि का उपचार यदि नहीं किया जाये तो इस व्याधि से छूटने के लिये अन्य कोई औषधि नहीं हैं ऐसा मैं दृढ़तापूर्वक मानता हूँ |

एक साथ सभी ईच्छाओं का सम्पूर्ण त्याग ना हो सके तो थोड़ी-थोड़ी ईच्छाओं का धीरे-धीरे त्याग करना चाहिये परंतु रहना चाहिये ईच्छा के त्याग में रत, क्योंकि सन्मार्ग का पथिक दुखी नहीं होता |

जो नराधम अपनी वासना और अहंकार को क्षीण करने का प्रयत्न नहीं करता वह दिनों-दिन अपने को रावण की तरह अंधेरे कुँऐं में ढ़केल रहा है |

ईच्छा ही दुखों की जन्मदात्री, इस संसाररूपी बेल का बीज है | यदि इस बीज को आत्मज्ञानरूपी अग्नि से ठीक-ठीक जला दिया तो पुनः यह अंकुरित नहीं होता |

रघुकुलभुषण राम ! ईच्छामात्र संसार है और ईच्छाओं का अभाव ही निर्वाण है | अतः अनेक प्रकार की माथापच्ची में ना पड़कर केवल ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि ईच्छा उत्पन्न ना हो |

अपनी बुद्धि से ईच्छा का विनाश करने को जो तत्पर नहीं, ऐसे अभागे को शास्त्र और गुरु का उपदेश भी क्या करेगा ?

जैसे अपनी जन्मभूमी जंगल में हिरणी की मृत्यु निश्चित है उसी प्रकार अनेकविध दुखों का विस्तार कारनेवाले ईच्छारूपी विषय-विकार से युक्त इस जगत में मनुष्यों की मृत्यु निश्चित है |

यदि मानव ईच्छाओं के कारण बच्चों-सा मूढ ना बने तो उसे आत्मज्ञान के लिये अल्प प्रयत्न ही करना पड़े | इसलिये सभी प्रकार से ईच्छाओं को शान्त करना चाहिये |

ईच्छा के शमन से परम पद की प्राप्ति होती है | ईच्छारहित हो जाना यही निर्वाण है और ईच्छायुक्त होना ही बंधन है | अतः यथाशक्ति ईच्छा को जीतना चाहिये | भला इतना करने में क्या कठिनाई है ?

जन्म, जरा, व्याधि और मृत्युरूपी कंटीली झाड़ियों और खैर के वृक्ष - समूहों की जड़ भी ईच्छा ही है | अतः शमरूपी अग्नि से अंदर-ही-अंदर बीज को जला ड़ालना चाहिये| जहाँ ईच्छाओं का अभाव है वहाँ मुक्ति निश्चित है |

विवेक वैराग्य आदि साधनों से ईच्छा का सर्वथा विनाश करना चाहिये | ईच्छा का संबंध जहाँ-जहाँ है वहाँ-वहाँ पाप, पुण्य, दुखराशियाँ और लम्बी पीड़ाओं से युक्त बंधन को हाज़िर ही समझो | पुरुष की आंतरिक ईच्छा ज्यों-ज्यों शान्त होती जाती है, त्यों-त्यों मोक्ष के लिये उसका कल्याणकारक साधन बढ़ता जाता है | विवेकहीन ईच्छा को पोसना, उसे पूर्ण करना यह तो संसाररूपी विष वृक्ष को पानी से सींचने के समान है |"

- श्रीयोगवशिष्ट महारामायण

*

आत्मबल का आवाहन

क्या आप अपने-आपको दुर्बल मानते हो ? लघुताग्रंथी में उलझ कर परिस्तिथियों से पिस रहे हो ? अपना जीवन दीन-हीन बना बैठे हो ?

...तो अपने भीतर सुषुप्त आत्मबल को जगाओ | शरीर चाहे स्त्री का हो, चाहे पुरुष का, प्रकृति के साम्राज्य में जो जीते हैं वे सब स्त्री हैं और प्रकृति के बन्धन से पार अपने स्वरूप की पहचान जिन्होंने कर ली है, अपने मन की गुलामी की बेड़ियाँ तोड़कर जिन्होंने फेंक दी हैं, वे पुरुष हैं | स्त्री या पुरुष शरीर एवं मान्यताएँ होती हैं | तुम तो तन-मन से पार निर्मल आत्मा हो |

जागो...उठो...अपने भीतर सोये हुये निश्चयबल को जगाओ | सर्वदेश, सर्वकाल में सर्वोत्तम आत्मबल को विकसित करो |

आत्मा में अथाह सामर्थ्य है | अपने को दीन-हीन मान बैठे तो विश्व में ऐसी कोई सत्ता नहीं जो तुम्हें ऊपर उठा सके | अपने आत्मस्वरूप में प्रतिष्ठित हो गये तो त्रिलोकी में ऐसी कोई हस्ती नहीं जो तुम्हें दबा सके |

भौतिक जगत में वाष्प की शक्ति, ईलेक्ट्रोनिक शक्ति, विद्युत की शक्ति, गुरुत्वाकर्षण की शक्ति बड़ी मानी जाती है लेकिन आत्मबल उन सब शक्तियों का संचालक बल है |

आत्मबल के सान्निध्य में आकर पंगु प्रारब्ध को पैर मिल जाते हैं, दैव की दीनता पलायन हो जाती हैं, प्रतिकूल परिस्तिथियाँ अनुकूल हो जाती हैं | आत्मबल सर्व रिद्धि-सिद्धियों का पिता है |

आत्मबल कैसे जगायें ?

हररोज़ प्रतःकाल जल्दी उठकर सूर्योदय से पूर्व स्नानादि से निवृत हो जाओ | स्वच्छ पवित्र स्थान में आसन बिछाकर पूर्वाभिमुख होकर पद्मासन या सुखासन में बैठ जाओ | शान्त और प्रसन्न वृत्ति धारण करो |

मन में दृढ भावना करो कि में प्रकृति-निर्मित इस शरीर के सब अभावों को पार करके, सब मलिनताओं-दुर्बलताओं से पिण्ड छुड़ाकर आत्मा की महिमा में जागकर ही रहूँगा |
आँखें आधी खुली आधी बंद रखो | अब फ़ेफ़ड़ों में खूब श्वास भरो और भावना करो की श्वास के साथ में सूर्य का दिव्य ओज भीतर भर रहा हूँ | श्वास को यथाशक्ति अन्दर टिकाये रखो | फ़िर 'ॐ...' का लम्बा उच्चारण करते हुए श्वास को धीरे-धीरे छोड़ते जाओ | श्वास के खाली होने के बाद तुरंत श्वास ना लो | यथाशक्ति बिना श्वास रहो और भीतर ही भीतर 'हरि: ॐ...' 'हरि: ॐ...' का मानसिक जाप करो | फ़िर से फ़ेफ़ड़ों में श्वास भरो | पूर्वोक्त रीति से श्वास यथाशक्ति अन्दर टिकाकर बाद में धीरे-धीरे छोड़ते हुए 'ॐ...' का गुंजन करो |

दस-पंद्रह मिनट ऐसे प्राणायाम सहित उच्च स्वर से 'ॐ...' की ध्वनि करके शान्त हो जाओ | सब प्रयास छोड़ दो | वृत्तियों को आकाश की ओर फ़ैलने दो |

आकाश के अन्दर पृथ्वी है | पृथ्वी पर अनेक देश, अनेक समुद्र एवं अनेक लोग हैं | उनमें से एक आपका शरीर आसन पर बैठा हुआ है | इस पूरे दृश्य को आप मानसिक आँख से, भावना से देखते रहो |

आप शरीर नहीं हो बल्कि अनेक शरीर, देश, सागर, पृथ्वी, ग्रह, नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र एवं पूरे ब्रह्माण्ड के दृष्टा हो, साक्षी हो | इस साक्षी भाव में जाग जाओ |

थोड़ी देर के बाद फ़िर से प्राणायाम सहित 'ॐ...' का जाप करो और शान्त होकर अपने विचारों को देखते रहो |

इस अवस्था में दृढ़ निश्चय करो कि : 'मैं जैसा चहता हूँ वैसा होकर रहूँगा |' विषयसुख, सत्ता, धन-दौलत इत्यादि की इच्छा न करो क्योंकि निश्चयबल या आत्मबलरूपी हाथी के पदचिह्न में और सभी के पदचिह्न समाविष्ठ हो ही जायेंगे |

आत्मानंदरूपी सूर्य के उदय होने के बाद मिट्टी के तेल के दीये के प्राकाश रूपी शूद्र सुखाभास की गुलामी कौन करे ?

किसी भी भावना को साकार करने के लिये हृदय को कुरेद ड़ाले ऐसी निश्चयात्मक बलिष्ट वृत्ति होनी आवशयक है | अन्तःकरण के गहरे-से-गहरे प्रदेश में चोट करे ऐसा प्राण भरके निश्चय्बल का आवाहन करो | सीना तानकर खड़े हो जाओ अपने मन की दीन-हीन दुखद मान्यताओं को कुचल ड़ालने के लिये |

सदा स्मरण रहे की इधर-उधर भटकती वृत्तियों के साथ तुम्हारी शक्ति भी बिखरती रहती है | अतः वृत्तियों को बहकाओ नहीं | तमाम वृत्तियों को एकत्रित करके साधनाकाल में आत्मचिन्तन में लगाओ और व्यवहारकाल में जो कार्य करते हो उसमें लगाओ |

दत्तचित्त होकर हरेक कार्य करो | अपने स्वभाव में से आवेश को सर्वथा निर्मूल कर दो | आवेश में आकर कोई निर्णय मत लो, कोई क्रिया मत करो | सदा शान्त वृत्ति धारण करने का अभ्यास करो | विचारशील एवं प्रसन्न रहो | स्वयं अचल रहकर सागर की तरह सब वृत्तियों की तरंगों को अपने भीतर समालो | जीवमात्र को अपना स्वरूप समझो | सबसे स्नेह रखो | दिल को व्यापक रखो | संकुचित्तता का निवारण करते रहो | खण्ड़ातमक वृत्ति का सर्वथा त्याग करो |

जिनको ब्रह्मज्ञानी महापुरुष का सत्संग और अध्यात्मविद्या का लाभ मिल जाता है उसके जीवन से दुःख विदा होने लगते हैं | ॐ आनन्द !

आत्मनिष्ठा में जागे हुए महापुरुषों के सत्संग एवं सत्साहित्य से जीवन को भक्ति और वेदांत से पुष्ट एवं पुलकित करो | कुछ ही दिनों के इस सघन प्रयोग के बाद अनुभव होने लगेगा कि भूतकाल के नकारत्मक स्वभाव, संशयात्मक-हानिकारक कल्पनाओं ने जीवन को कुचल ड़ाला था, विषैला कर दिया था | अब निश्चयबल के चमत्कार का पता चला | अंतर्तम में आविरभूत दिव्य खज़ाना अब मिला | प्रारब्ध की बेड़ियाँ अब टूटने लगी |

ठीक हैं न ? करोगे ना हिम्मत ? पढ़कर रख मत देना इस पुस्तिका को | जीवन में इसको बार-बार पढ़ते रहो | एक दिन में यह पूर्ण ना होगा | बार-बार अभ्यास करो | तुम्हारे लिये यह एक ही पुस्तिका काफ़ी है | अन्य कचरापट्टी ना पड़ोगे तो चलेगा | शाबाश वीर! शाबाश !!